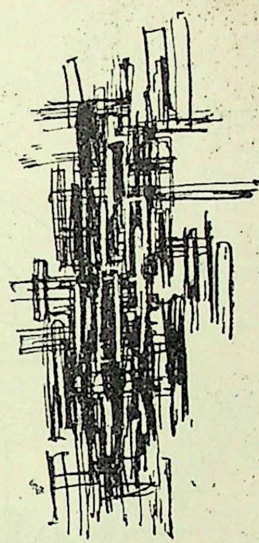

जानने
की बातें
एक



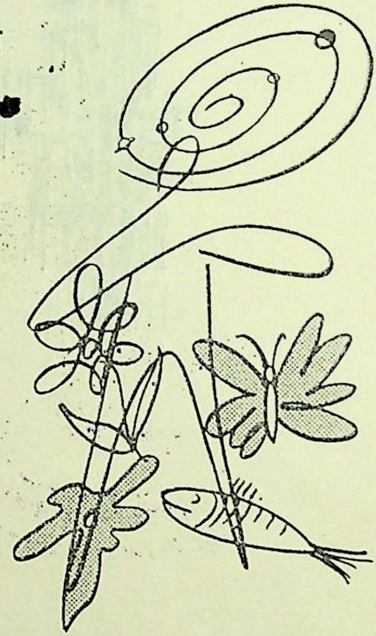
जानने की बातें

१

प्रकृति-विज्ञान

जानने की बातें

पहला भाग



इलाहाबाद बम्बई पटना

प्रकृति-विज्ञान

सम्पादक
देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय
अनुवादक
हंसकुमार तिवारी

राजकमल प्रकाशन —— राजकमल —— दिल्ली

'जानने की बातें' स्वाक्षर लिमिटेड, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित बंगला पुस्तक-माला 'जानबार कथा' का अनुवाद है।

मूल्य : दो रुपये पचास नये पैसे

प्रथम संस्करण : १९५९

मुद्रक : श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

समर्पण

जो दुनिया को जानकर उसे बदलेंगे
जो अँधेरा दूर करके रोशनी फैलाएँगे
जो अपने हाथों से नया भविष्य लाएँगे
अपने देश के उन्हीं छोटे-छोटे बच्चों के लिए

इस पुस्तक-माला के लेखक

अशोक घोष
चिन्मोहन सेहानवीस
जगदीश दासगुप्त
देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय
प्रभात दासगुप्त
प्रशान्त सान्याल
मनमोहन वंद्योपाध्याय
रमाकृष्ण मित्रा
श्यामल चक्रवर्ती
सुभाष मुखोपाध्याय
ज्योतिर्मय दे

चित्रकार

अमूल्य दास
ज्योत्स्ना घोष दस्तीदार
प्रवीर दासगुप्त
हरनारायण दास

आवरण

खालिद चौधरी

क्रम

जानने की बातें

परिचय

'जानने की बातें' क्यों ?

क्यों नहीं, नयी बातों को जानने की इच्छा तो सभी के मन में होती है। इसके अलावा भी आज जानने या न जानने के साथ ज़िन्दगी और मौत का बहुत नज़दीकी रिश्ता है। आज से शायद बीस साल पहले ऐसी बात नहीं थी।

बिकनी द्वीप कहाँ है, बिकनी द्वीप कितनी दूर है, हमारे दादा ने कभी ये सवाल नहीं उठाए थे, और ये सवाल उठाने की उन्हें कोई ज़रूरत भी नहीं पड़ी थी।

लेकिन आज बात दूसरी है। हम अखबार में पढ़ते हैं कि बिकनी द्वीप में हाइड्रोजन बम फटा। फिर कुछ दिन बाद हम

सुनते हैं कि इस बम के फटने से जापानी मछुहरों के शरीर जलकर राख हो गए। उसके बाद हम देखते हैं कि हमारे वैज्ञानिक भी हवाई जहाज़ों के पंखों की जाँच करके यह मालूम करने की कोशिश करते हैं कि उस बम की राख उड़कर हमारे आकाश तक आई है या नहीं। यह राख कैसी तबाही लाती है!

इसीलिए यह सवाल उठा कि बिकनी द्वीप कहाँ है, वह कितनी दूर है!

पहले ज़माने में लोग इस सवाल को न उठाकर भी मज़े में जीवन बिता सकते थे।

लेकिन हम ऐसा नहीं कर सकते।

हमने पूछा, हाइड्रोजन क्या है? मालूम हुआ कि वह कोई चिड़िया नहीं है; एक तरह की गैस है। गुब्बारे में भर दी जाती है तो गुब्बारा तेज़ी से आसमान की तरफ़ उठने लगता है, छोटे-छोटे बच्चे उसे देखकर खुशी से तालियाँ बजाने लगते हैं। उनके लिए यह खेल हैं।

पर हाइड्रोजन बम कोई खेल नहीं है। कितनी ताक़त होती है उसमें! शायद सारी दुनिया को ही जलाकर राख कर दे!

किसी ने हिसाब लगाकर बताया है कि अगर पाँच-सात बम पृथ्वी पर पाँच-सात जगह फेंक दिये जायँ तो……

तो क्या होगा? क्या होगा?

पृथ्वी पर जितनी हरियाली है वह पलक मारते जलकर राख हो जायगी।

सारे जानवर जलकर राख हो जायँगे, सारे परिंदे भी। इन्सान का नाम-निशान मिट जायगा; इन्सान की सारी क़ीर्ति मिट जायगी।

हमारे मन में यह जानने की इच्छा पैदा हुई कि हाइड्रोजन बम कैसे बनाए जाते हैं। पर उस बम की बेहद ताक़त की बातें सुनते-सुनते हमारे मन में यह जानने की इच्छा की जगह एक और सवाल उठता है—क्या यह सच है कि दुनिया में उसके बाद फ़ूल नहीं खिलेंगे ? चिड़ियाँ नहीं बोलेंगी ? यहाँ पर जितने इन्सान हैं वे सब जलकर राख हो जायँगे ?

सुन्दर पृथ्वी! इन्सान ने तिल-तिल करके उसकी सतह पर कैसी-कैसी खूबसूरत चीजें बनाई हैं ! वही पृथ्वी क्या एक दिन राख का ढेर बनकर अन्धों की तरह आसमान पर चक्कर काटने लगेगी ?

सब कुछ इन्सान के हाथ में है। आज सारी दुनिया की ही नहीं बल्कि खुद इन्सान की तक़दीर का फैसला इन्सान के हाथ में है !

हाइड्रोजन बम ! इस बम को पाकर इन्सान क्या करेगा ?

कुछ लोगों ने कहा, लड़ाई करेंगे।

लेकिन एक और लड़ाई किसलिए ? क्या इन्सान अभी कुछ ही दिन पहले की तबाही को इतनी जल्दी भूल गया ? कितने लोग मारे गए ? कितने बच्चे ? कितने बूढ़े ? कितनी औरतें ?

और उससे भी पहले, पहली लड़ाई में ?

कुछ लोगों ने कहा, यह सब कर्म की बात है, विधि का विधान है, इसका कोई इलाज नहीं !

क्या यह बात ठीक है ? किसी ने कहा, यह ठीक नहीं है। इलाज है; इसका इलाज इन्सान के हाथ में है।

कुछ लोगों ने कहा, असल में यह सब कुछ नहीं है। असल बात यह है कि इन्सान की तबीयत ही ऐसी है। उसकी नस-नस में खून का नशा समाया हुआ है। थोड़े-थोड़े दिन बाद जब वह खून में नहा लेता है, तभी उसे चैन मिलता है। इसलिए······कोई इलाज नहीं है !

क्या ये बातें सच हैं ? किसी और ने कहा, झूठ बात है। जो लोग लड़ाई छेड़ना चाहते हैं वे ही ऐसी मनगढ़न्त बातें फैलाते हैं। इन्सान खूंखार जानवरों जैसा दरिंदा नहीं है। इन्सान इन्सान से मुहब्बत करता है।

किसी ने कहा, इन सब बातों को लेकर बहस करने से क्या होगा ? असली हालत को ध्यान में रखने की ज़रूरत है। पृथ्वी पर इन्सानों की तादाद जिस तेज़ी से बढ़ती जा रही है उसे देखते हुए कुछ ही दिन बाद लोग भूखे मरने लगेंगे। ज़मीन पर खाने-पीने की चीज़ें बेहद नहीं हैं। इसलिए यह अच्छा ही है कि लड़ाई होने से थोड़े-थोड़े अरसे बाद कुछ फ़ालतू लोग साफ़ हो जाते हैं।

क्या ये बातें ठीक हैं ? किसी और ने कहा, झूठी बात है। ज़मीन पर खाने-पीने का जितना सामान है और इन्सान खाने की नयी-नयी चीज़ें तैयार करने के जो तरीक़े ईजाद करता जा रहा है, उसे देखते हुए हमें पता चलता है कि

शायद खाने-पीने की चीज़ों की कभी तंगी नहीं होगी।

फिर, इस तरह की खौफ़नाक लड़ाई की ज़रूरत क्या है? किसी ने कहा, इसकी वजह साफ़ है।

इसकी वजह इतनी ही साफ़ है जितनी यह बात कि दो और दो मिलकर चार होते हैं।

वजह मालूम करनी होगी। उसको दूर करने का उपाय करना होगा। हम उसे दूर कर सकते हैं। शान्ति होने पर हमारी पृथ्वी सुन्दर रूप में निखरकर हमारे सामने आ जायगी।

मानो हमें ज़िंदा रहने का एक सहारा मिल गया। हमने सवाल किया, वह वजह क्या है? उसको दूर करने का उपाय क्या है?

यह बहुत लम्बी-चौड़ी बात है। इसमें गहराई तक पैठने के लिए कई बातों को जानना होगा :

विज्ञान
इतिहास
दर्शन
अर्थशास्त्र
राजनीति

फिर वही जानने की बातें आ गईं। ज़िंदा रहने की उम्मीद और कोशिश में जानने की बातों का सवाल बार-बार उठता है।

जानने की बातों को सीखने के लिए ही तो बच्चे स्कूल जाते हैं। अगर ऐसा है तो फिर यह दस जिल्दों वाली किताब क्यों ?

शिक्षा-व्यवस्था के बारे में हम तरह-तरह की बुनियादी बातों पर बहस कर सकते हैं। पर यहाँ पर उसके लिए जगह नहीं है; और कोई ज़रूरत भी नहीं है। दस जिल्दों वाली यह किताब क्यों, इसका एक सीधा-सादा जवाब है।

स्कूल के बच्चे अपने स्कूल की किताबों के अलावा भी कुछ किताबें पढ़ना चाहते हैं। पढ़ते भी हैं। स्कूल की किताबें पढ़ते हैं, दूसरी किताबें भी पढ़ते हैं। वे अपने स्कूल की हद से बाहर बहुत-सी बातें सीखते हैं।

हम भी स्कूल से बाहर हो बच्चों की एक जमात बनाना चाहते हैं। इसमें जिन बातों की चर्चा होगी उनको समझने या न समझने का पास या फेल होने से कोई ताल्लुक़ नहीं है। इसलिए इन बातों को सुनना भी तुम्हारे लिए आसान है, और हमारे लिए कहना भी। हो सकता है कि जो बात एक बार तुमने स्कूल में सुन रखी हो वही यहाँ भी फिर से उठाई जाय, लेकिन उस पर विचार नये ढंग से किया जायगा। यह भी हो सकता है कि हम यहाँ जिन बातों पर चर्चा करें वे स्कूल में न उठाई गई हों।

ऐसे बहुत से विषय हैं, जिनकी जानकारी हमें स्कूल में पढ़ते हुए न हो सकी थी, लेकिन उन्हें जानने की भूख थी। सो उन विषयों के बारे में स्कूल से बाहर हमने थोड़े-बहुत बिखरे-बिखरे विचार बटोरे थे, जैसे, ललित-कला, दर्शन।

इसलिए 'जानने की बातें' की योजना बनाते वक़्त यह तय किया गया कि जहाँ तक बन पड़े, साफ और आसान ढंग से वैसे विषयों पर बच्चों के लिए लिखना चाहिए। और इसीलिए 'जानने की बातें' में ऐसे विषयों के लिए भी गुंजाइश की गई, जिन पर कम पढ़े-लिखे लोगों और बच्चों के लिए नहीं लिखा जाता।

तो मोटी-मोटी योजना की शक्ल हुई कैसी ?

पहला भाग : प्रकृति विज्ञान
दूसरा भाग : रसायन विज्ञान
तीसरा भाग : पदार्थ विज्ञान–१
चौथा भाग : ललित-कला
पाँचवाँ भाग : दर्शन
छठा भाग : इतिहास–१
सातवाँ भाग : इतिहास–२
आठवाँ भाग : साहित्य
नवाँ भाग : पदार्थ विज्ञान–२
दसवाँ भाग : भारत और दुनिया की बात

जानने की जितनी बाते हैं क्या उन सब पर चर्चा की जायगी ? बिलकुल नहीं। सारी बातों पर चर्चा करने के लिए अगर कई मोटी-मोटी किताबें लिखी जायँ तब भी पूरा नहीं पड़ेगा। फिर भी हमने पहले ही से एक खास रास्ते को ध्यान में रखा है।

आम तौर पर हम जब कुछ पढ़ते हैं या सीखते हैं तो हम उस विषय को बाक़ी सभी विषयों से अलग रखकर समझने की

कोशिश करते हैं। एक विषय का दूसरे विषय के साथ क्या रिश्ता है, इसका हमें ध्यान नहीं रहता। परन्तु इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है, क्योंकि दुनिया में हर चीज़ का बाकी तमाम चीज़ों के साथ गहरा रिश्ता है। इसीलिए किसी चीज़ की जानकारी हासिल करते वक़्त इन रिश्तों को पहचानना ज़रूरी है। दूसरे शब्दों में, हमारी इस किताब में हर विषय का दूसरे विषय के साथ रिश्ता है। दर्शन, विज्ञान, शिल्प, साहित्य, अर्थशास्त्र, इतिहास—ज्ञान के ये सब अलग-अलग विषय अलग-अलग कोठरियों की तरह नहीं, बल्कि एक ही जिस्म के अलग-अलग हिस्सों की तरह हैं।

हमारी इस जमात के लिए शुरू से ही एक बहुत बड़ी आसानी थी। शुरू में ही यह तय कर लिया गया था कि जिस विषय पर भी चर्चा की जायगी वह मनुष्य को केन्द्र मानकर की जायगी। जो आदमी चित्र बनाता है वही आदमी ज़िंदा रहने के लिए खाना और कपड़ा भी चाहता है। ज़िंदा रहने के लिए खाना-कपड़ा जुटाना अर्थशास्त्र का सवाल है और चित्र बनाना ललित-कला का। एक ही आदमी दो दिशाओं में कोशिश करता है, इसलिए इन दोनों दिशाओं के बीच सम्बन्ध होना लाज़मी है। अगर इस सम्बन्ध को ध्यान में न रखा जाय तो यह ख्याल पैदा हो सकता है कि जो लोग चित्र बनाते हैं वे सिर्फ़ हवा पर ही ज़िंदा रहते हैं। यह तो बिलकुल मुमकिन नहीं है। बात तो सीधी-सादी है, फिर भी हमेशा हमारे ध्यान में नहीं रहती।

लेकिन हमारे लिए इस बात को ध्यान में रखने में एक

आसानी रही है। शुरू से ही हमारे दिमाग में मनुष्य की कहानी थी, प्रकृति के खिलाफ़ मनुष्य की लड़ाई की कहानी थी। अगर इन्सान प्रकृति को क़ाबू में करके ज़िंदा रहने के सवाल को हल कर लेने में कामयाब न होता तो शिल्प, साहित्य, दर्शन और विज्ञान कुछ भी मुमकिन न होता। इसी ज़िंदा रहने के लिए भोजन जुटाने में इन्सान की कामयाबी वह असली बुनियाद थी जिस पर उसने अपनी बहुरूपी सृष्टि की रचना की।

और चूँकि हम इस ढंग से सोचने की कोशिश करते हैं इसीलिए हमारी नज़र में इन्सान की बनाई हुई यह रंग-बिरंगी दुनिया कोई बिखरी हुई चीज़ नहीं है; इसमें हर चीज़ का दूसरी चीज़ के साथ सम्बन्ध साफ़ है।

एक और भी आसानी रही। पहली बार सुनने में यह बात बहुत अजीब लग सकती है। कई लोगों ने मिलकर ये कई किताबें लिखीं, लेकिन अलग-अलग नहीं। हमने एक-दूसरे के साथ मिलकर काम किया। इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि सबने एक ही क़लम पकड़कर एक साथ काग़ज़ पर लिखा। काम को बाँटकर ही किया गया। लेकिन काम बाँट लेने के बाद सबने मिलकर आपस में चर्चा की और पूरी योजना सोचकर तैयार कर ली। इसीलिए जिसके हिस्से में जो भाग भी लिखने का काम आया हो, पर सबके दिमाग में योजना एक ही थी। उसके बाद, लिखने के बाद भी, सबने मिलकर एक बार फिर उसमें सुधार किये, उसे सँवारा। हम लोगों में जिसका भाषा का ज्ञान अच्छा था, उसने बाकी लोगों की भाषा को सँवारा। जिसे विज्ञान का ज़्यादा ज्ञान था उसने

दूसरों की लिखी हुई बातों में वैज्ञानिक तथ्यों को जाँचा। इस तरह अलग-अलग दिशाओं से अलग-अलग ढंग से हम सबने मिलकर यह दस जिल्दों वाली किताब लिखी।

हमने बहुत-सी किताबें जुटाई थीं; बड़ी माथापच्ची की थी। लिखने का काम पूरा हुआ। चित्र तैयार हो गए। लेकिन उसके बाद? उसके बाद का काम सिर्फ़ दिमाग लड़ाने से पूरा होने वाला नहीं था। उसके लिए सचमुच मेहनत करने की ज़रूरत थी, हाथ से काम करना था, चोटी का पसीना एड़ी तक पहुँच जाने की बात थी। चित्रों को जस्ते की चादरों पर उतारना था। इसी को ब्लाक तैयार करना कहते हैं। जो कुछ लिखा गया था उसे सीसे के अक्षरों में बिठाकर छपाई की मशीन पर ले जाना था। फिर होशियार कारीगरों के हाथों इस मशीन को चलाना था। तभी हाथ की लिखी हुई चीज़ छपी हुई किताब की शक्ल में सामने आ सकती थी। इसके बाद भी बहुत-सा काम था। छपे हुए कागज़ को लेकर दफ्तरी के घर पहुँचाना था। वहाँ भी कारीगरों के हाथों बिना काम चलने वाला नहीं था। किताब लिख चुकने पर हम तो गर्व से फूले नहीं समाते थे। पर वह तो सिर्फ़ दिमागी काम की बात थी। अगर उसे हाथ के काम का सहारा न मिलता तो जिस मक़सद से यह सब कुछ लिखा गया था वह कभी भी पूरा न होता। हमने इस तरह हाथ के काम की इज़्ज़त करना सीखा। यह बात सीखना हमारे लिए बहुत क़ीमती है। हमने हाथ से की जाने वाली मेहनत की इज़्ज़त करना सीखा।

इन्सान का दिमाग और इन्सान के हाथ, इन्सान की बुद्धि

ग्रौर इन्सान की मेहनत, दोनों मिलकर पृथ्वी को कितना सुन्दर बना सकते हैं !

जो जंगल की घास थी, जो जंगल के बाँस थे, वे इन्सान के हाथों में पहुँचकर सभ्यता का एक ग्रनोखा हथियार बन गए—कागज़। मिट्टी के नीचे सीसा बेजान पड़ा था; इन्सान के हाथों में पहुँचकर वह बोलता हुग्रा ग्रक्षर बन गया। पत्थर के बीच लोहा छिपा था; इन्सान के हाथों में पहुँचकर उसने ग्रनोखी मशीन का रूप धारण कर लिया !

उसी मशीन से सफ़ेद काग़ज़ पर सीसे के ग्रक्षरों को दबा देने से 'जानने की बातें' तैयार हो गई।

इस पूरे काम में जो बहुत-सी ग्रनोखी बातें हैं उन सबकी ग्रोर हमेशा हमारा ध्यान नहीं रहता। सचमुच कितनी हैरानी की बात है !

यह ग्रनोखी बात कैसे मुमकिन हुई ? इन्सान के दिमाग़ लड़ाने से ? सिर्फ़ यही नहीं। इन्सान ने ग्रपनी मेहनत भी लगाई।

वह मैदानों से, जंगलों से घास काटकर लाता है, बाँस काटकर लाता है, मिट्टी खोदकर उसमें से सीसा निकालता है, खानों से लोहा निकालता है। हजारों ग्रादमी इस काम में लगे रहते हैं। ग्रगर वे ग्रपना खून-पसीना एक न करते तो न काग़ज़ होता, न सीसे के ग्रक्षर होते।

फिर भी यह बात हमेशा हमारे ध्यान में नहीं रहती। क्यों नहीं रहती ? इसका सबब हमें मालूम हुग्रा। हमारे सोचने के तरीक़े में एक भूल है। क्या भूल है ? जो हाथ से काम करता

है उसे हम घटिया समझते हैं, उसे हम नीच समझते हैं। हमारी भूल क्या है ? हम मेहनत की इज़्ज़त को ध्यान में नहीं रखते। मज़दूर की इज़्ज़त को ध्यान में नहीं रखते।

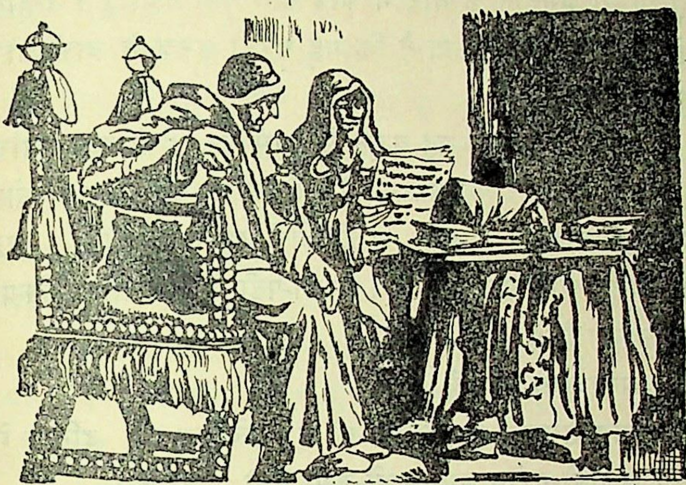
दस जिल्दों की यह किताब लिखते हुए हमने हाथ की मेहनत की इज़्ज़त करना सीखा।

इस इज़्ज़त को अपने मन से दूर कर देने पर मनुष्य के भविष्य के लिए एक बुनियादी ख़तरा पैदा हो जायगा, क्योंकि इस पृथ्वी पर जो करोड़ों लोग रहते हैं उनकी मेहनत की बदौलत ही यह पृथ्वी चलती है। इसलिए अगर मुट्ठी-भर लोग पृथ्वी को तबाह करने की साज़िश करेंगे तो आज करोड़ों लोग उनका रास्ता रोककर खड़े हो जायँगे। वे उनसे कहेंगे : हम शान्ति चाहते हैं, हम नयी-नयी चीज़ें बनाना चाहते हैं, हम पृथ्वी को नया रूप देना चाहते हैं।

दुनिया में शान्ति का राज्य होगा, नयी-नयी चीज़ें बनेंगी। इन्सान के हाथ, इन्सान का ज्ञान, इस बात की ज़मानत हैं।

—सम्पादक

आकाश की कहानी



यह तस्वीर अदालत की नहीं है, लेकिन इसमें जो झाँकी है, वह विचार की ही है।

विचार आखिर किसका ? और उसका वह कसूर ही कौनसा हैं ?

कसूर है धर्म की मुख़ालफ़त—लोगों में किसी ऐसी बात का फैलाना, जोकि धर्म के खिलाफ़ पड़ती हो। यह विचार इसीलिए हो रहा है। आज के दिन शासक के खिलाफ कुछ कहने से जेल की सज़ा होती है; एक ऐसा भी ज़माना था जब धर्म के खिलाफ कुछ कहने पर कड़ी-से-कड़ी सज़ा मिलती थी। यही कारण है कि ऊपर की तस्वीर में जो लोग फ़ैसला देने बैठे हैं, वे मामूली हाकिम-हुक्काम नहीं हैं, वे सब हैं गिरजे के पण्डित-

पुरोहित। वही विचारक हैं।

और जिनका विचार चल रहा है, उन बेचारों ने सच पूछिए तो भगवान् के बारे में कोई बात नहीं कही है। उन्होंने तो केवल इतना ही कहा है कि यह धरती सूरज के चारों ओर घूमती है।

लेकिन खुलकर यह कहने से धर्म पर ऐसी क्या आँच आती है कि अदालत बैठाने की नौबत आ पड़े? यह कोई अनहोनी बात तो है नहीं, न ही कोई अटकलबाजी है। यह तो सोलह आने सच बात है। लिखा-पढ़ी में इसे साबित किया जा सकता है।

अजीब-सी बात है!

बात सचमुच ही अजीब-सी है। लेकिन इस दुनिया में ऐसी अजीबो-गरीब बातें कभी-कभी सुनी जाती हैं।

इस मामले के जो असामी हैं, वे बूढ़े आदमी हैं—बहुत बूढ़े, अड़सठ साल की उम्र। वैज्ञानिक हैं। नाम है गैलीलियो। बात इटली की राजधानी रोम शहर की है। सन् १६३२ का ज़माना। और जो इस मामले के बड़े विचारक हैं, वे हैं ईसाइयों के धर्म-गुरु, जिन्हें पोप कहते हैं।

उन दिनों पोप की बेहद धाक थी। और तो और, राजा तक को उनका आदेश मानना पड़ता था।

पोप का कहना था, धर्म के खिलाफ कोई चूँ नहीं कर सकता। जो करेगा, उसे सजा भोगनी पड़ेगी।

इसी के विचार के लिए समय-समय पर पंडे-पुरोहितों का दल बैठा करता था। कहीं किसी ने धर्म के खिलाफ कुछ कहा

है ? कहा है तो उसे दण्ड देना पड़ेगा। ऐसे विचार भी उस तरह के नहीं होते जोकि आम अदालतों में हुआ करते हैं। यह उनसे अलग ढंग का विचार है। इसे कहते हैं इनक्विज़ीशन।

इस विचार में दी जाने वाली सज़ा भी कुछ हल्की-फुल्की नहीं होती। कसूर करने वाले को या तो जलाकर मार डाला जाता, या उसे आम रास्ते पर फाँसी दे दी जाती, या कोड़ों की मार से खाल उधेड़कर जान ले ली जाती। केवल तलवार से गरदन काटने की मनाही थी, इसलिए कि उनकी पोथियों में लहू बहाना पाप लिखा है।

ईसाइयों के पोथी-पुराणों के मुताबिक सूरज ही शायद धरती के चारों ओर घूमता है। भला उन पोथियों का लिखा कभी झूठ हो सकता है !

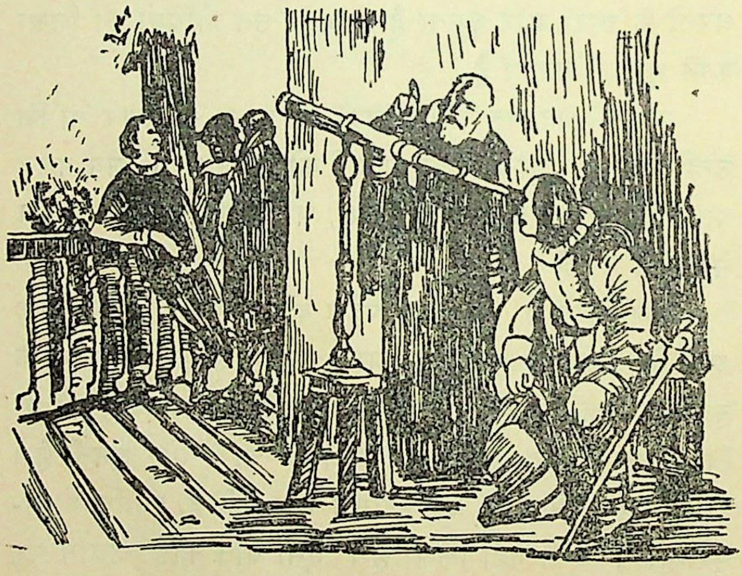
पोप की अदालत में गैलीलियो का इतना ही कसूर था कि उन्होंने अपनी आँखों-देखी सचाई को माना था। उन गलत बातों को उन्होंने कबूल नहीं किया, जो पुरानी पोथियों में भूल से लिखी गई हैं।

गैलीलियो से कुछ दिन पहले कोपरनिकस नाम के एक आदमी ने यही कहना चाहा था। तरह-तरह के लेखे-जोखे के बल पर उन्होंने यह साबित कर दिखाने की कोशिश की थी कि असल में यह धरती ही सूरज के चारों ओर घूमती है। ईसाई महन्तों ने कहा, यह हरगिज़ सच नहीं है, क्योंकि पोथी-पुराणों में ऐसा नहीं लिखा है। ऐसी बात कोई ज़बान पर नहीं ला सकता। इधर गैलीलियो ने आकाश देखने का एक औजार बनाया। उस औजार के सहारे उन्होंने देखा कि

कोपरनिकस ने जो कहा था, वही ठीक है। निडर होकर इस सच्ची बात को उन्होंने किताब में भी लिख दिया। लिखना था कि सारे-के-सारे पंडे गुस्से से पागल हो उठे। बेचारे गैलीलियो को पकड़ मँगवाया गया।

कहते हैं, गैलीलियो पर बेतरह ज़ुल्म ढाये गए। उन्हें बुरी तरह सताया गया। घुटने टेककर उन्हें यह कहने को लाचार किया गया कि मैंने जो लिखा है, वह भूल है। मैंने यह कसूर किया है।

ग्रौर फिर शायद खड़े होते ही उन्होंने कहा था, सच यही है कि पृथ्वी ही सूरज के चारों ग्रोर घूमती है।



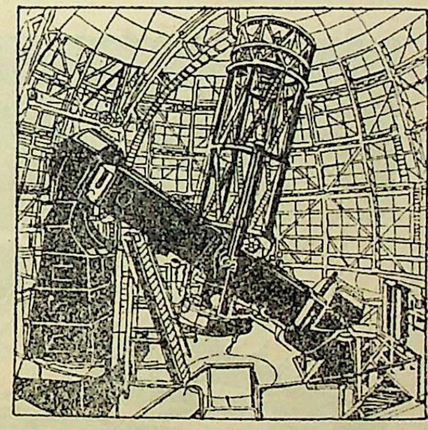
ग्रपने हाथों से बनाई दूरबीन से गैलीलियो कवि मिल्टन को ग्रासमान दिखा रहे हैं।

इस हिमाकत के लिए बूढ़े गैलीलियो को ज़िन्दगी के बाकी दिन कैद में काटने पड़े थे। तो भी उन्होंने अपनी बात नहीं बदली।

सचाई के साधक गैलीलियो को प्रणाम है कि उन्होंने सीना तानकर ज़ुल्म को गले लगाया, पर ढोंग और झूठ के आगे सचाई पर आँच नहीं आने दी।

आखिर मन का ऐसा बल, इतना बड़ा साहस उन्हें कहाँ मिला कि उस बुढ़ापे के सुख-चैन से हाथ धोया, पर सत्य को नहीं छोड़ा ?

गैलीलियो का वह बल था अपनी आँखों देखे सत्य का बल।



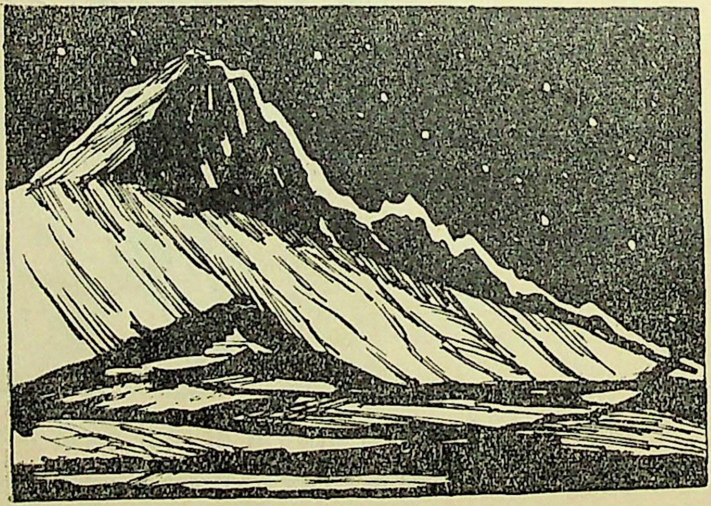
आज की दूरबीन। गैलीलियो की दूरबीन से इसका कितना फ़र्क़ है।

आकाश की ओर महज़ ताकने से ही क्या उसकी सारी बातें देखी-जानी जा सकती हैं ? फिर गैलीलियो ने अपनी आँखों इस भेद को किस तरह देख लिया ?

आँखें तो उनके भी दो ही थीं। लेकिन बहुत-बहुत दिनों की मेहनत और सूझ के ज़रिए उन्होंने एक तीसरी आँख पाई थी। वह तीसरी आँख और कुछ नहीं, एक औज़ार थी। उसका नाम है—

टेलिस्कोप

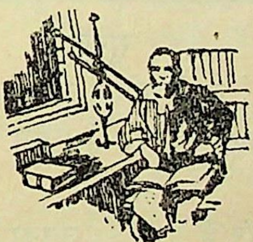
अपनी भाषा में हम इसे दूरबीन कहते हैं। आज इसकी बदौलत धरती के किसी एक कोने में बैठकर आदमी तारों और ग्रहों के विशाल जगत् के सारे भेद खोल रहा है। वह दूरबीन नाम की अनमोल चीज़ लोगों के हाथों सबसे पहले गैलीलियो ने ही दी थी। उन्होंने ही उसे अपने हाथों बनाया था और पहले-पहल उन्होंने उससे अपार आकाश का भेद जानने की कोशिश की थी। गैलीलियो की बनाई हुई दूरबीन और

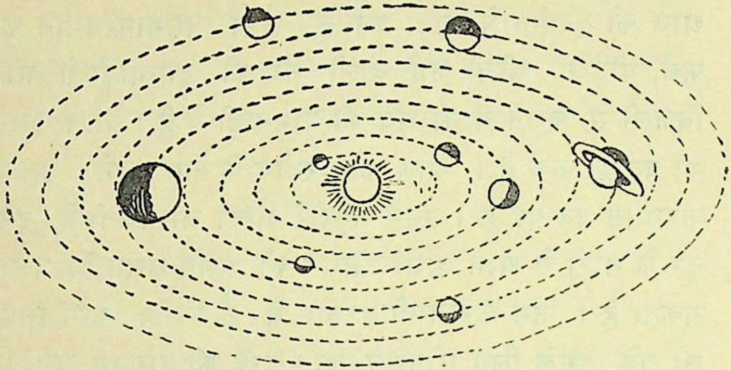


यह है चाँद का पहाड़। इसे दूरबीन से देखना पड़ता है।

ग्राज की दूरबीन में बड़ा फ़र्क़ है, जैसा ग्रासमान-ज़मीन का फ़र्क़, घोड़े से खींची जाने वाली तब की ट्रामगाड़ी में ग्रौर बिजली से चलने वाली ग्रब की ट्रामगाड़ी में है। बल्कि इससे भी ज़्यादा फ़र्क़ है। ग्राज की दूरबीन के क्या कहने, उसकी करामात बढ़ गई है। उससे तस्वीरें खींची जा सकती हैं, दूर-दूर के तारों से ग्राने वाली रोशनी को ग्रलग-ग्रलग किया जा सकता है। उस करामाती दूरबीन से ठीक-ठीक काम लिया जा सके, इसके लिए लोगों ने खास तरह की इमारतें बनवाई हैं। दूरबीन की उन इमारतों को ग्राब्ज़रवेटरी कहते हैं।

ग्राइए, इस दूरबीन को राह दिखाने का भार सौंपकर हम ग्रासमान के विशाल राज्य में पिल पड़ें।





सौर-मण्डल। बीच में है सूरज। जो सूरज के सबसे समीप है, वह है बुध। उसके बाद शुक्र, शुक्र के बाद धरती, धरती के बाद मंगल, मंगल के बाद ग्रहों का राजा बृहस्पति, उसके बाद शनि, शनि के बाद यूरेनस, उसके बाद नेपचून और सबसे आखीर में प्लूटो।

सौर-मण्डल

सूरज

इतना बड़ा नक्षत्र! उसके भीतर ठोस कहने को कुछ भी नहीं। जो कुछ भी है जलती हुई गैस है। गैस का वही गोला हमारा सूरज है।

तेज का भंडार है सूरज। उसका तेज रोशनी की तरंग होकर रह-रहकर शून्य में छिटका पड़ता है और वही रोशनी हमारी आँखों में आ पहुँचती है। उसी रोशनी से हम अपनी धरती को चीन्हते हैं, सूरज को भी।

सूरज बहुत बड़ा है, बहुत-बहुत बड़ा। किन्तु कितना बड़ा

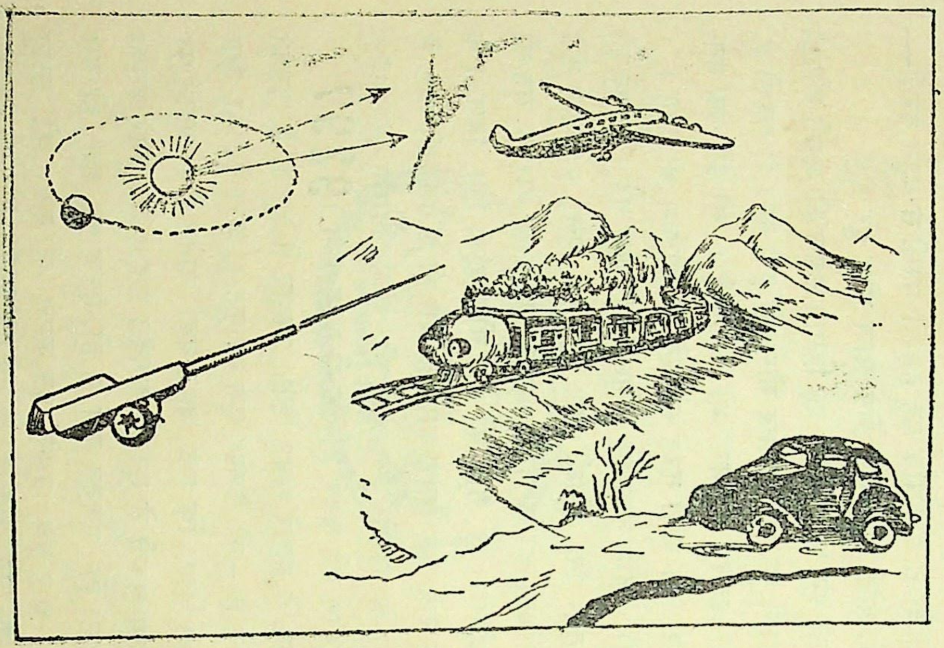
आखिर ? लेखा लगाकर यह जाना गया है कि ऐसी तेरह लाख पृथ्वियाँ उसकी गोद में मज़े से आ सकती हैं।

फिर क्या बात है कि हम उसे एक छोटी थाली से ज़्यादा बड़ा नहीं देखते ? क्योंकि वह हमारी धरती से बहुत दूर है— बहुत दूर, कोई नौ करोड़ तीस लाख मील दूर।

किन्तु इन आँकड़ों का यह हिसाब सहज ही अपनी खोपड़ी में नहीं आने का। एक लाख मील की दूरी क्या हो सकती है, साफ-साफ इतना समझना भी कठिन है। सो इसे एक मन-गढ़न्त उपमा से भली तरह समझने की कोशिश की जाय।

बत्ती जलाने लगा कि उँगली ज़रा जल गई। जलते ही मैं जान गया कि उँगली जल गई है। भला यह जान कैसे गया ? पंडितों का कहना है, हमारे शरीर में बारीक सूत-सी महीन-महीन स्नायु नाम की एक चीज़ होती है। बिजली के तारों की राह जैसे खबर जाती है वैसे ही उँगली की नोक से इस स्नायु के ज़रिए जल जाने की खबर दिमाग तक पहुँच गई। दिमाग को खबर हुई कि मैं जल गया।

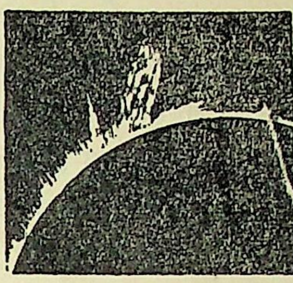
स्नायु के सहारे खबर किस रफ्तार से चलती है, इसका भी हिसाब है—फी सेकण्ड एक सौ फुट। ज़रा देर को ऐसा मान लिया जाय कि एक बहुत बड़ा दानव है। बढ़ाने पर उसका हाथ धरती से सूरज तक पहुँच सकता है। मगर उसका हाथ कितना ही मजबूत क्यों न हो, सूरज को छूते ही जल जायगा। और तब उसके इस जलने की खबर को स्नायु द्वारा दिमाग तक पहुँचने में पूरे एक सौ साठ साल लगेंगे। आखिर इतने दिन तक वह दानव जिन्दा भी रहेगा ! सो



पचास साल पहले कोई मेलगाड़ी कितनी तेज़ दौड़ सकती थी ? फी मिनट एक मील । होड़ में दौड़ने वाली आज की कोई तेज़ मोटर ? फी मिनट छः मील । हवाई जहाज़ ? घंटे में छः सौ मील । तोप का गोला किस तेज़ी से छूटता है ? तीन सैकंड में एक मील । और रोशनी ? एक सैकण्ड में १ लाख ८६ हज़ार मील ।

उसका हाथ जलकर चाहे राख ही हो जाय, उसे इसकी खबर नहीं होगी।

इससे अन्दाज़ किया जा सकता है कि सूरज हमारी धरती से कितनी दूर है, जब फी सेकण्ड सौ फुट की गति से दौड़ने वाली किसी खबर को वहाँ से यहाँ तक आने में एक सौ साठ साल का समय लग जाता है !



सूरज से उठती रहने वाली आग की लपलपाती लपट, जैसे कोई शरारती बालक हो। कभी-कभी यह लपट आसमान में तीन-चार लाख मील तक ऊपर उठ जाती है।

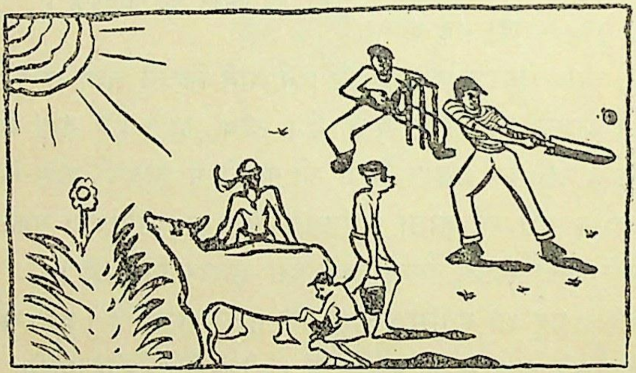
गनीमत है कि सूरज इतनी दूर है ! गरमियों में जब ताप सौ डिग्री से कुछ ज़्यादा बढ़ जाता है, तो भारी हाय-तोबा मच जाती है ; न जाने कितने लोग लू की लपटों में आकर जान गँवा बैठते हैं। जब इतने ही ताप में यह हाल है, तो दस हज़ार डिग्री की गरमी में आदमी राख के सिवाय और क्या रह जाता ! हिसाब से ऐसा जाना जा सका है कि सूरज की गरमी कम-से-कम दस हज़ार डिग्री है।

लेकिन यह भी गनीमत ही है कि सूरज गरम है। हमारी ज़िन्दगी उसके ताप से ही कायम है। पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, आदमी, सब सूरज के ताप से ही जीवित हैं। हम सभी की सारी ही ताकत किसी-न-किसी रूप में सूरज से ही मिली हुई है।

इतना ज़रूर है कि सूरज की कुल गरमी का निहायत

छोटा-सा भाग धरती के हिस्से पड़ता है। बाकी सारा-का-सारा आसमान में इधर-उधर बिखर जाता है। इसे एक मनगढ़न्त हिसाब से ही समझने की कोशिश की जाय। पूरे साल-भर में सूरज का जितना ताप होता है अगर उसका दाम दो सौ करोड़ रुपये हो, तो बरस-भर में धरती के हिस्से में कुल एक रुपया मिलेगा।

यों तो धरती सूरज का चक्कर काटा करती है, पर सूरज खुद भी स्थिर नहीं है। वह भी हरदम लट्टू की तरह घूमता ही रहता है। और घूमता भी अकेले नहीं है, अपने चारों ओर नौ ग्रहों को घुमाता रहता हैं। ये नौ ग्रह हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो।



यह इतनी बहादुरी कौन दिखा रहे हैं यहाँ ? जो भी हों चाहे, कितना दूध उन्होंने पिया है कि कलाई में इतनी ताकत है उनके ? दूध जरूर गाय का है। गाय घास-पत्ते खाकर दूध देती है। घास-पत्ते सूरज के ताप से बनते हैं। इस तरह सभी ताकतों की जड़ में सूरज है।

इस ओर छोरहीन शून्य में इन नौ को मिलाकर सूरज का परिवार है। उस परिवार को सौर-मण्डल कहा जाता है।

सूरज एक जलती हुई और खौलती हुई गैस का गोला है, यह कहा जा चुका है। वह गैस हर घड़ी सूरज में आग की आँधियाँ उठाया करती है। उन आँधियों के खौफनाक झोंकों से लम्बी-लम्बी लपलपाती लपटें निकला करती हैं—ऐसी लपटें कभी-कभी सूरज से तीन-तीन, चार-चार लाख मील ऊपर तक उठ जाया करती हैं। लेकिन उठने को वे चाहे जितना ऊँचे उठ जायँ, फिर वापस लौट आना पड़ता है। आखिर सूरज में मध्याकर्षण का खिचाव भी तो है।

ग्रहों की कहानी

ये नौ ग्रह बिना चूके, बिना रुके, हर दम सूरज के चारों ओर चक्कर काटा करते हैं। इनके घूमने की राह का घेरा अण्डाकार है। एक बात और भी ध्यान देने की है—ये पश्चिम से पूरब को घूमा करते हैं।

सूरज के सबसे ज्यादा पास बुध है। सूरज से इसकी दूरी केवल तीन करोड़ मील की है। सूरजमुखी फूल के समान उसकी एक पीठ सदा सूरज की ही ओर झुकी रहती है। दूसरी पीठ न खत्म होने वाली रात के घुपघुप अँधेरे से ढकी रहती है।

चिड़चिड़े स्वभाव के, गरम-मिजाज़ के आदमी जैसे किसी को देखते ही झल्ला उठते हैं, वैसे ही सूरज के ज़्यादा नज़दीक रहने के कारण बुध का पारा हमेशा चढ़ा ही रहता है। मजाल

नहीं कि कोई जीव-जन्तु उसके पास फटके ! हवा तक नहीं फटकती तो जीव-जन्तु कहाँ ! हवा की खास आदत है कि गरमी बढ़ी और वह उड़ भागने को तैयार हो गई। कहीं देखा ज़रूर होगा कि आग लगने पर हवा किस कदर भाग-दौड़ शुरू कर देती है। चूँकि बुध सूरज के बहुत करीब है, इसलिए उसकी गरमी भी बेहिसाब है। उस गरमी में और किसी के बचने की तो क्या बात, हवा भी नहीं टिक पाती।

बुध के बाद वाली राह शुक्र की है। यह ग्रह हम लोगों का जाना-चीन्हा है। साल में कुछ दिन तक सूरज के डूब जाने पर हम इसे पश्चिम में देखा करते हैं। तब इसे कहा करते हैं, संध्या-तारा। साल के दूसरे एक समय सूरज उगने से पहले यह हमें पूरब में उगा दीखता है। तब इसे कहते हैं—भुरकवा या शुकतारा। शुक्र को हम तारा कहा तो करते हैं, पर यह तारा नहीं, ग्रह है। शुक्र के चारों ओर गाढ़े मेघों का एक परदा-सा पड़ा है। लिहाज़ा उस परदे को फाड़कर भीतर के बारे में खास कुछ नहीं जाना जा सका है।

शुक्र में जीव-जन्तु का वास है क्या ? कहाँ से होगा भला ! ऑक्सीजन के बिना कोई भी जीव जी नहीं सकता और शुक्र में ऑक्सीजन लगभग है ही नहीं। हाँ, वहाँ कार्बन-डाइऑक्साइड गैस काफी है। पंडितों का कहना है, किसी दिन वहाँ जीवों का जन्म हो भी सकता है। शुरू-शुरू में धरती में भी ऑक्सीजन नहीं के बराबर थी, ज़्यादा थी कार्बन-डाइऑक्साइड गैस। पेड़-पौधों की बदौलत यहाँ ऑक्सीजन की पूँजी आगे चलकर काफी बड़ी हो गई।

शुक्र के बाद पड़ती है पृथ्वी, जिसकी चर्चा आगे की जायगी। पृथ्वी के उस पार है मंगल। लाल रंग का यही ग्रह पृथ्वी के सबसे निकट है। मंगल में जीता-जागता भी कुछ है या नहीं, इस सवाल पर पंडितों में कई तरह की बातें चलती रहती हैं। धरती पर जैसी नहरें हैं, मंगल में भी वैसी नहरें हैं। लेकिन वे नहरें धरती जैसी टेढ़ी-मेढ़ी नहीं हैं—बिलकुल सीधी हैं। गरमी के दिनों में जब बरफ पिघलती है, ये नहरें लबालब भर जाती हैं। नहरों के सीधी होने से बहुतों का ख़याल है कि वहाँ आदमी ज़रूर हैं। आदमी के बिना वैसी सीधी नहरें तैयार किसने कीं? लेकिन कुछ लोग इस बात को नहीं मानते। उनकी राय में दरअसल वे नहरें सीधी नहीं हैं, आँखों की चूक से वे सीधी दिखाई-भर पड़ती हैं।

दूरबीन से आँखें जब मंगल को पीछे छोड़कर आगे बढ़ती हैं, तो राह में दपदप करती हुई अनगिनत टुकड़ियाँ दिखाई देती हैं। कहते हैं, वे शायद टूटे हुए ग्रहों के जमाव हैं। हैं तो वे ग्रह ही, मगर चूँकि वे छोटे हैं, इसलिए उन्हें कहते हैं ग्रहिका।

उन बहुत ही छोटे ग्रहों की दुनिया से दूर निकल जाने पर तब कहीं सबसे बड़े ग्रह बृहस्पति से भेंट होगी। बृहस्पति ग्रहों के राजा हैं। हमारे यहाँ पुराणों में बृहस्पति को देवताओं का गुरु कहा गया है—बाल-पके पंडित किस्म के। बुढ़ापे ही से शायद यह ग्रह एकबारगी ठंडा पड़ गया है। अगर किसी दिन कोई वहाँ पहुँच जाय, तो रोते-रोते उसकी तो गत बन जाय, क्योंकि बृहस्पति के शरीर में एमोनिया गैस भरी है। यह गैस

रुलाती है।

बृहस्पति के बाद शनि की बारी है। इसकी शक्ल-सूरत कुछ ऐसी बनी है कि देखे बिना रहा नहीं जा सकता। इसके चारों ओर कोई चीज़ हरदम घूमती रहती है, जो देखने में तीन लड़ी की माला-सी है। असल में यह कुछ छोटी चीजों की जमी परतों का पहिया है।

अब तक जिन छः ग्रहों से जान-पहचान हुई, वे आँखों से भी देखे जा सकते हैं। किन्तु इसके बाद यूरेनस है, जिसे बग़ैर दूरबीन के नहीं देखा जा सकता।

यूरेनस की छानबीन करते हुए नेपचून का पता चला। और अभी उस दिन, कोई बीस-पच्चीस साल पहले एक और ग्रह की खबर लगी। उसका नाम है प्लूटो।

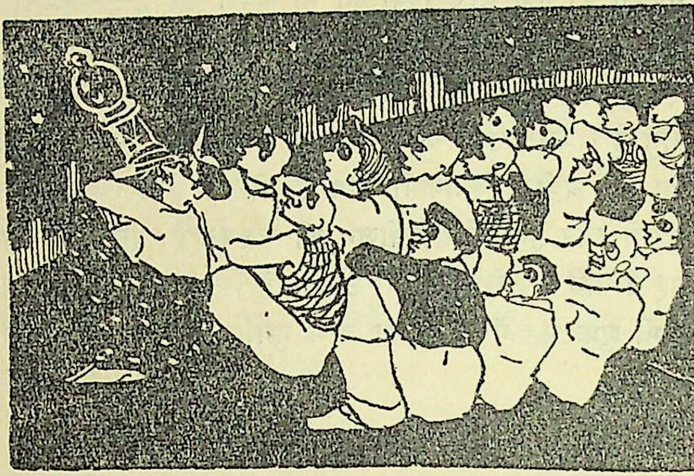
कुल मिलाकर आठ ग्रहों का परिचय मिला, बाकी रह गई पृथ्वी।

जितने भी ग्रह हैं, सब सूरज से पैदा हुए हैं। ये और कुछ नहीं, सूरज के शरीर के एक-एक अंश हैं। कोई बड़ा है, तो कोई छोटा। इन सबकी बनावट में कम या ज़्यादा वही चीज़ें हैं, जिनसे कि सूरज बना है। किसी ग्रह की वे चीज़ें अभी भी जलती-उबलती हुई हैं और किसी-किसी की ठंडी होकर जम गई हैं।

सूरज से जिस तरह ग्रहों का जन्म हुआ, उसी तरह सूरज के गिर्द घूमने वाले ग्रहों से उपग्रहों की पैदाइश हुई। हमारी पृथ्वी ग्रह है, चाँद उसका उपग्रह। सभी ग्रहों के उपग्रह नहीं हैं। मंगल के दो हैं, बृहस्पति के ग्यारह, शनि के नौ, यूरेनस के पाँच,

नेपचून का एक और पृथ्वी का भी केवल एक है—चन्द्रमा।

धरती के समान और भी किसी ग्रह में जीवन है क्या? एक मंगल में ही इसके होने-न होने का विवाद पंडितों में चल रहा है। अन्य सभी ग्रहों के बारे में सबकी एक राय है। वह राय यही है कि किसी जीव के जीने के लिए जिस हद तक गरमी और हवा में ऑक्सीजन की जरूरत है, वह किसी दूसरे ग्रह में नहीं है। लेकिन ऐसी उम्मीद है कि बहुत-बहुत दिन बाद कभी शुक्र ग्रह में जीवों का जन्म मुमकिन हो भी सकता है।



नकली आसमान : आसमान की छान-बीन करने वाले पंडित किसी बड़े हॉल में इसी तरह का बनावटी आकाश बनाकर ग्रह-तारों के हाल जानने की कोशिश करते हैं। इसे प्लैनेटेरियम कहते हैं। बायस्कोप के परदे पर जैसे तस्वीरें उग आती हैं, वैसे ही इसमें एक बहुत बड़े गोल गुंबद की भीतरी दीवार में ग्रह-नक्षत्रों की तस्वीरें दिखाई पड़ती हैं।

नक्षत्र-मण्डल

यह छोटा-सा खेत, और मैं खड़ा अकेला
उसे घेरकर लहराते पानी का रेला।

और खेत के उस पार मेघों की धुन्ध से ढका हुआ एक छोटा-सा गाँव।

अगर छूमन्तर के ज़ोर से अपनी नज़र की दौड़ को उसके

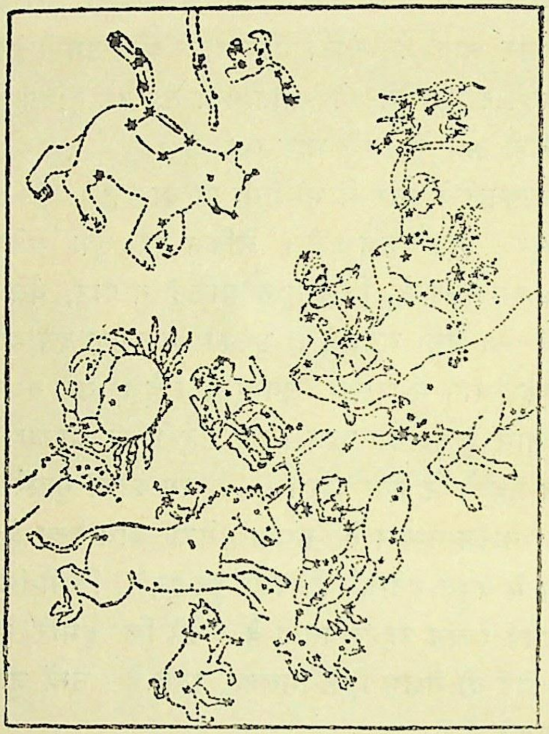
आगे और कुछ मीलों तक बढ़ाया जा सकता, तो और क्या-क्या नज़र आता ? चारों ओर पानी की उमड़ी हुई बाढ़ है, कहीं-कहीं टापू जैसे कोई-कोई गाँव तैर रहे हैं; कहीं खेत हैं, और कहीं ऊँचे पेड़ों की भीड़ खड़ी है।

आकाश के बारे में भी ऐसी ही बात है।

सूरज एक नक्षत्र है। लेकिन वही एक अकेला नक्षत्र नहीं। इस शून्य में, जिसका न आर है न पार, वैसे अनगिनत नक्षत्रों का मेला लगा है। उनका एक-एक दल आसमान के एक-एक स्थान में अड्डा लगाए बैठा है। उन सबका मिला-जुला नाम है नक्षत्र-मण्डल। बड़े शहरों का आकाश भी मानो मुहल्ले-मुहल्ले में बँटा रहता है। अलग-अलग मुहल्ले में अलग-अलग नक्षत्र-मण्डल ने अपना बसेरा बाँध रखा है; कहीं ये आपस में बहुत सटे-सटे हैं, कहीं दूर-दूर। किसी-किसी नक्षत्र को कतई अलग रहना पसन्द है, जैसे कि हमारे सूरज को। कोई-कोई दो नक्षत्र हिल-मिलकर रहते हैं। उन्हें जुड़वाँ नक्षत्र कह सकते हैं।

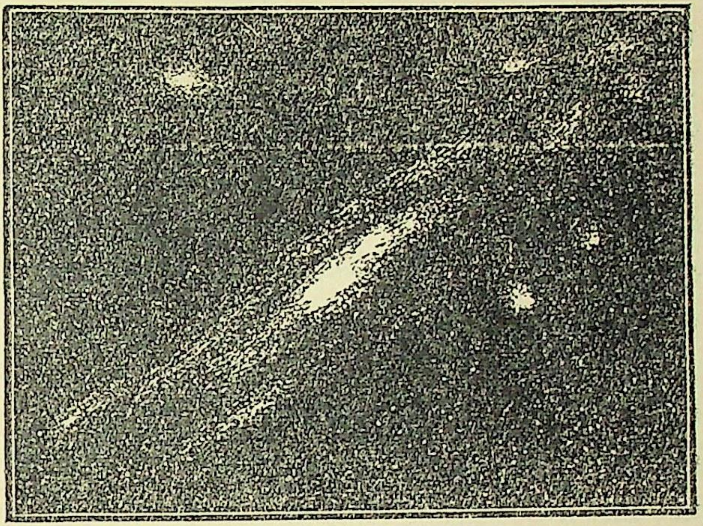
हरएक की शक्ल-सूरत भी अलग-अलग। देखने में कोई माला जैसा है, कोई भालू जैसा और कोई अंग्रेज़ी अक्षर W जैसा। एक उनमें से ऐसा है कि अगर अपने मन से लकीर खींचकर उसे जोड़ा जाय तो एक धनुषधारी आदमी की शक्ल का हो जाता है। इसे काल-पुरुष कहते हैं।

और, इनकी रोशनी की भी कैसी छटा है ! कोई जगमग जलता है, कोई टिमटिम। किसी की रोशनी है धप्धप् सफेद और किसी की लाली लिये हुए। किसी की रोशनी नियम से



सरदियों में निर्मल और खचाखच तारों से भरे आकाश को दक्खिन की ओर मुँह करके देखिए कि उन तारों को ऐसी मन-गढ़ंत रेखाओं से जोड़-जोड़कर ऐसी शक्लें बनाई जा सकती हैं या नहीं।

घटती-बढ़ती रहती है और कोई धप्प से एकाएक जल उठता है। किसी की चमक धीरे-धीरे बुझती जा रही है और कोई रोशनी की अपनी सारी पूँजी गँवाकर सदा के लिए बुझ ही गया है।



यह है नीहारिका, विश्वकर्मा का कारखाना। जलती हुई गैस आसमान में तैर रही है। कभी इसी गैस से शायद और भी कितने ही ग्रह-नक्षत्रों का जन्म होगा।

आसमान में इनके सिवाय और भी कुछ चीज़ें नज़र आती हैं। थोड़े में उनके बारे में भी जान लिया जाय।

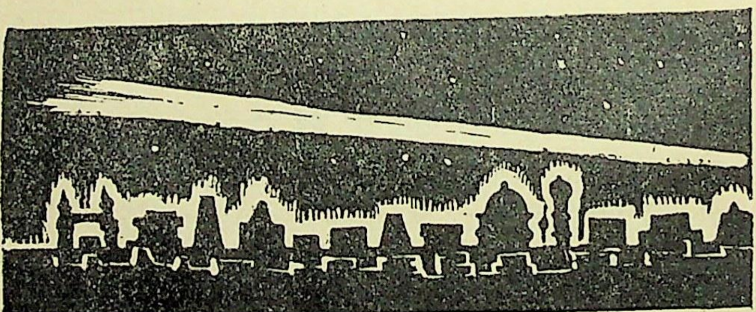
रात में नक्षत्रों पर पोत दी गई रोशनी जैसी जो-कुछ छोटी-बड़ी चीज़ें नज़र आती हैं, उन्हें नीहारिका कहते हैं। यों नीहारिका के बारे में जानने की बातें बहुतेरी हैं। तब तक इतना कह रखें कि ये हल्की गैस के बादल हैं।

अमावस की अँधेरी रात में आसमान के एक छोर से दूसरे छोर को जोड़ती हुई कोई साफ़-सफेद माला-सी बिखरी दिखाई पड़ती है। यह छायापथ है। ग़ौर से देखने पर पता

चलता है, आकाश में जितने भी तारे हैं, सब इसी छायापथ के आसपास आ जुटे हैं। यों छायापथ आधा गोल दिखाई पड़ता है, पर है वह पूरा गोल। धरती की दूसरी पीठ से उसका बाकी हिस्सा दिखाई दे सकता है।

और ये हजरत हैं धूमकेतु। धूमकेतु का अर्थ हुआ धुएँ की पताका। इनकी पताका खूब हल्की धूलों की बनी है। ये सूरज के पास पहुँचे नहीं कि रोशनी के झटके से इनकी पताका बिखर जाती है।

ये धूमकेतु बड़े नाजुक होते हैं, शायद इसीलिए कि इनका शरीर खासी हल्की धूल का बना होता है। क्या सूरज और क्या ग्रह, जो भी इसे अपने समीप पाता है, इस पर अपना ज़ोर आज़मा लेता है। दूसरों के दबाव से इसका शरीर टूट-टूट पड़ता है और बेचारे की ज़िन्दगी ही खत्म हो जाती है। मगर मरकर भी छुटकारा नहीं मिलता; समीप आते ही धरती उसकी लाश को ऐसा झटका देती है कि हवा से रगड़



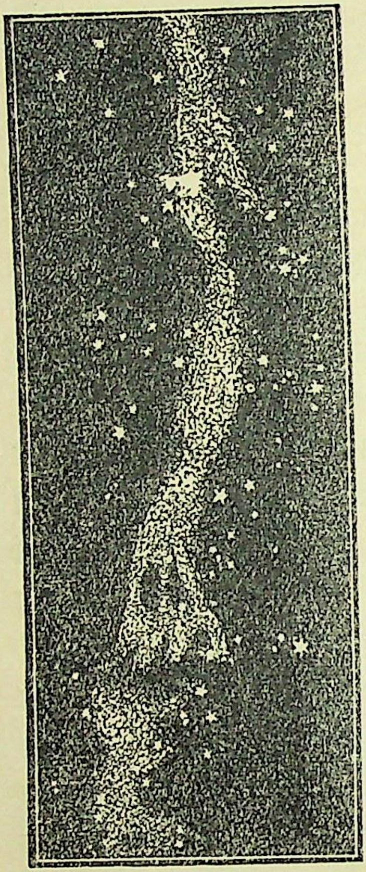
यह तस्वीर एक धूमकेतु की है। इसकी दुम २० करोड़ मील लम्बी है। सन् १८४३ में राह भूलकर यह सूरज के मुहल्ले में घुस आया था।

खाकर वह जलने लगती है। इसी जलती लाश को उल्का कहते हैं, यानी उल्का मरे हुए धूमकेतु का जलता हुआ शरीर है।

पेंसिल की लम्बाई कितनी होती होगी ? चार-छः इंच। आदमी कितने लम्बे होते हैं ? पाँच या छः फुट। रेल से कलकत्ता और बम्बई की दूरी क्या होगी ? १२२३ मील।

लेकिन आकाश की दूरी भी अगर इसी नाप से नापी जाय तो पार नहीं पड़ सकता। धरती से सूरज की दूरी नौ करोड़ तीस लाख मील है। परन्तु हमारे सूरज से एण्ड्रोमिडा नाम की नीहारिका कितनी दूर है ? मील के नाप से यह नापते नहीं बन सकता। इसके लिए किसी दूसरे नाप की ज़रूरत है। इन बातों की खोज करने वालों ने वैसा नाप निकाला है। उसे आलोक-वर्ष कहते हैं। इस आलोक-वर्ष के क्या अर्थ हुए ?

मान लिया जाय, खेल-कूद की एक होड़ लगी है। उस होड़ में आदमी ही नहीं, सभी वस्तुओं को भी शामिल होने की छूट है। ऐसे में जब दौड़ होगी, तो कौन पहला आएगा ? दौड़ में नम्बर एक हो जायगी रोशनी। दौड़ने में कोई इसका सानी नहीं। वह एक सेकण्ड में एक लाख छियासी हज़ार मील दौड़ सकती है। इस रफ्तार से एक मिनट, एक घण्टा, एक दिन, एक मास और एक साल में वह कितना दौड़ जायगी ? १ लाख ८६ हज़ार मील×६०×६०×२४×३६५ मील। गुणा करते-करते दिमाग की नसें दुखने लगेंगी। पंडितों ने इसलिए सुदूर आकाश को नापने का एक सहज नाप निकाला है, जिसका



छायापथ : अमावस की अँधेरी रात में आसमान के एक से दूसरे छोर तक सफेद जोत का कोई हार-सा बिखरा पड़ा दिखाई देता है। उसीके आस-पास अनगिनत तारों की भीड़ लगी दीखती है।

नाम आलोक-वर्ष है। आलोक-वर्ष का मतलब ही हुआ कि रोशनी साल-भर में जितनी दूर चलती है, उतनी दूर। उतनी दूर, यानी ३६५×२४×६०×६०×१८६००० मील। एण्ड्रोमिडा नाम की जो नीहारिका है, उसकी रोशनी को यहाँ आने में नौ लाख साल लग जाते हैं। इसे और आसानी से यों कहा जायगा—एण्ड्रोमिडा नौ लाख आलोक-वर्ष दूर है। कहना कितना सहज हो जाता है! यह कहना कैसा लगता कि एण्ड्रोमिडा ९०००००×३६५×६०×६०×२४×१८६००० मील दूर है।

एक मज़े की बात बताएँ! बहुत सारी बातों की जानकारी हमें इसलिए होती है कि रोशनी हमारी आँखों तक आ पहुँचती है। सूरज का

उगना हम देखते हैं। इसका मतलब यह होता है कि रोशनी आकर हमें सूरज की खबर देती है। सूरज से धरती तक पहुँचने में रोशनी को कोई आठ मिनट बीस सेकण्ड का समय लग जाता है। गरज़ कि उगते ही सूरज को देखने की बात किसी कदर बासी पड़ जाती है, क्योंकि यह खबर रोशनी की मारफत सूरज से आठ मिनट बीस सेकण्ड पहले ही चल चुकी होती है।

ख़याल को ज़रा और दूर दौड़ाया जाय। एण्ड्रोमिडा की बात लें। वहाँ बैठकर आज अगर कोई हमारी दुनिया को देखे तो वह क्या देखेगा? वही बातें, वही झाँकियाँ, जो यहाँ नौ लाख साल पहले गुज़र चुकी हैं, क्योंकि वहाँ जो रोशनी आज पहुँची है, वह यहाँ से नौ लाख साल पहले ही रवाना हुई थी। इसलिए इतने दिनों की बासी खबर के सिवाय वहाँ और क्या पहुँचेगा!

अब दूर आसमान से नीचे भी उतरना है। अब तक जिनसे हमारी जान-पहचान होती रही, वे हमारे बहुत दूर के पड़ोसी हैं। उनकी शक्ल-सूरत, साज-पोशाक, चाल-ढाल सब कौतूहल पैदा करने वाले हैं। किन्तु जो आकाश का होते हुए भी हमारे सगे-सम्बन्धी-सा, घर का हो गया है, वह चन्द्रमा है। उसे हम चन्दामामा कहते हैं। चाँद पर इतनी लोरियाँ हैं, इतने गीत और कविताएँ हैं कि इसका हद-हिसाब नहीं! कोई सुन्दर मुखड़ा देखते ही हम कह देते हैं, चन्द्रमुख!

दूरबीन से देखने पर पता चलता है, सचमुच चाँद उतना खूबसूरत नहीं है जितनी कि उसकी धूम है। उसके तमाम बदन में बरफ से लदे टेढ़े-मेढ़े, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ भरे पड़े हैं। मीलों लम्बी खाइयाँ और बड़े-बड़े खन्दक हैं। ये सारे खन्दक उन ज्वालामुखियों के मुँह हैं, जो अब भभककर ठण्डे पड़ गए हैं। वे खंदक महज़ राख से पटे हुए हैं।

चाँद की हालत बुध से मिलती-जुलती है। वहाँ पानी की एक बूँद नहीं है, हवा नहीं है। इसीलिए और कोई चीज़ भी वहाँ नहीं है। वह सरद, अँधेरा और नींद का देश है।

हवा-पानी न होने से वहाँ कोई जीवन नहीं है। लेकिन हवा-पानी होने ही से क्या वहाँ जीवन होने की गुंजाइश है ? यहाँ माघ की हड्डी छेदने वाली रातों को रजाई में लिपटे पड़े हम जब सुबह की बेचैनी से राह देखते हैं, तो देखते-ही-देखते सूरज निकल आता है। इसी तरह दिमाग पिघलाने वाली चिलचिलाती धूप गरमियों में वैसे ही ढल जाती है; मीठी मन्द बयार के छुए जी जुड़ा जाता है। यह तो इसलिए होता है कि हमारी धरती पर दिन और रात का फासला सिर्फ दस-बारह घण्टों का है। लेकिन चाँद में दिन है तो पन्द्रह दिन तक लगातार दिन ही है—ऐसी तेज़ धूप कि सारा पानी खलबल खौलने लगे। फिर रात है तो पन्द्रह दिन की लम्बी रात—ऐसी करारी सरदी कि नदी-तालाब जमकर बरफ। हमारे यहाँ दिन-रात चौबीस घण्टों के हैं, चाँद में तीस दिन के।

ऐसे देश में कोई क्या खाकर जिए !

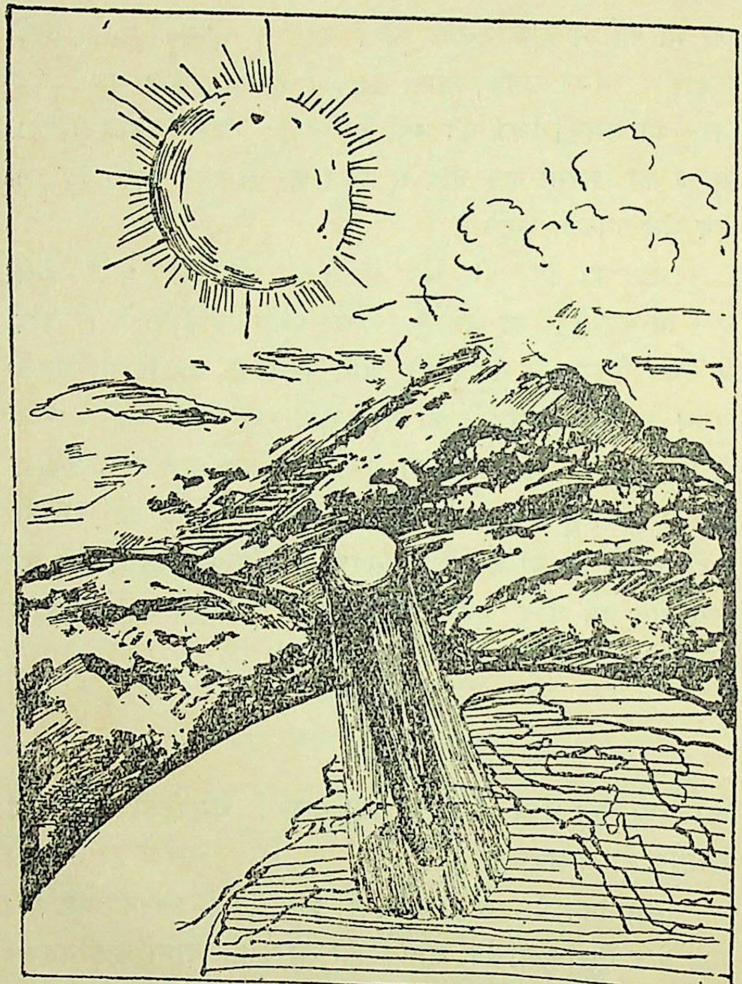
मगर इस सबके बावजूद चाँद सुन्दर है। उसमें और चाहे

जो भी क्यों न हो, उसकी मीठी जोत से किसकी आँखें नहीं जुड़ातीं ! मगर उसकी खोटी तकदीर को क्या कहा जाय, यह जोत भी उसकी निज की नहीं है; कहिए, उधारी रोशनी है। सूरज की किरणें जब चाँद से टकराकर छिटकी पड़ती हैं, तो हम उसे चाँदनी कहते हैं।

चाँद की एक पीठ सदा सूरज की ही ओर घूमी रहती है। मावस-पूनो का अँधेरा-उजाला इसीलिए होता है। चाँद के जिस हिस्से पर सूरज की जोत पड़ती है, वह हिस्सा केवल पूनम के दिन ही धरती की ओर मुड़ा रहता है। यही कारण है कि उस दिन हम चाँद को पूरा गोल देख पाते हैं। इसका उलटा होता है अमावस के दिन। उस दिन चाँद का रोशनी पड़ने वाला हिस्सा धरती की तरफ से मुँह फेरे रहता है। सो उस रात हमें चाँद नहीं दिखाई देता। धरती पर वह रात अँधेरी रहती है।

कोलम्बस का नाम किसने नहीं सुना ! अमरीका का पता उन्होंने ही लगाया था।

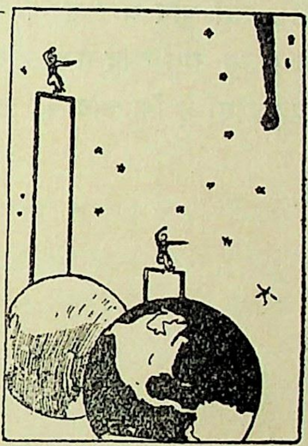
अमरीका में उन्हें क्या-क्या झंझट नहीं झेलने पड़े थे। एक बार ऐसा हुआ कि जहाज़ का सारा ही खाना चुक गया। अब लोग-बाग खाएँ तो क्या खाएँ ? वहाँ के बाशिन्दों से कुछ मिल सके तो जान बचे। इसके सिवाय और क्या उपाय था ! लेकिन वहाँ के लोग एक दाना भी देने को राज़ी न थे। गोरी चमड़ी वालों को वे फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहते थे।



शून्य से सूरज-ग्रहण की झाँकी। चाँद सूरज की सीध में आ खड़ा हुआ है। धरती के ऊपर गोल-सी जो जगह है, वह अँधेरी है। फिर भी वहाँ से सूरज का थोड़ा-बहुत भाग दिखाई पड़ता है। लेकिन घेरे के ठीक बीचोंबीच घटाटोप अँधेरा है।

कोलम्बस ने एक तरकीब निकाली। बोले, अगर तुम लोग खाने का सामान लाकर नहीं दोगे, तो मैं सूरज को बुझा दूँगा। और कहना था कि ज़रा देर में सूरज बुझ भी गया। अब तो अमरीका वाले बहुत डर गए। ढेर-का-ढेर खाना लिये हुए आए। कोलम्बस ने कहा, ख़ैर, तुम लोगों ने सूझ-बूझ का काम किया है। मैं सूरज को फिर जला देता हूँ। ज़रा देर बाद सूरज उग आया।

धरती पर अगर कोई ६ फुट ऊँची कुदान मार सकता है, तो चाँद पर वह ३६ फुट ऊँचा कूद सकेगा। यह इसलिए कि चाँद से धरती पर खिंचाव ६ गुना ज़्यादा है, यानी चाँद से धरती ६ गुना ज़्यादा उसे अपनी ओर खींचती है।



आख़िर यह कैसे हुआ ? असल में वह सूरज-ग्रहण था।

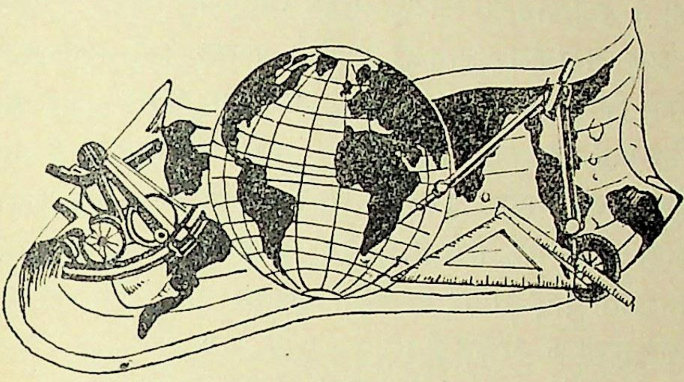
कोलम्बस को ग्रहण लगने का पता था। पंडित लोग लेखे-जोखे से ग्रहण का घड़ी, घण्टा, पल सब ठीक-ठीक बता सकते हैं।

मगर यह ग्रहण होता क्या है ? सीधी भाषा में कहा जाय तो होगा, चाँद, सूरज और धरती की आँख-मिचौनी। लेकिन सही बात यह है कि उस दिन चाँद सूरज और धरती के

बीचों-बीच ग्रा जाता है। हर ग्रमावस को वह ठीक-ठीक बीच में नहीं रहता, कभी कुछ नीचे, कभी कुछ ऊपर रह जाता है। जिस ग्रमावस को वह एकबारगी बीच में ग्रा जाता है, उस दिन सूरज ग्रोट में पड़ जाता है। कभी तो सूरज पूरा-का-पूरा छिप जाता है ग्रौर कभी उसका कोई हिस्सा। यही सूरज ग्रहण है। जब पूरा सूरज ढक जाता है, तब पूर्ण ग्रहण होता है।

चन्द्रमा में भी ग्रहण लगता है—पूर्णिमा की रात में। उस रात चाँद ग्रौर सूरज के ठीक बीच में धरती खड़ी होती है। उस रात चाँद पर धरती की छाया पड़ती है। नतीजा यह होता है कि चाँद का चमकता चेहरा स्याह हो जाता है।

पृथ्वी की कहानी



बहुत विषयों पर बायस्कोप की तस्वीरें बनती हैं। लेकिन धरती की कहानी पर कोई तस्वीर नहीं बनाता। हमारी यह धरती न जाने कितने करोड़ वर्षों की पुरानी है। इसकी छाती पर रंग, जोत और जीवन की विविधताओं का अन्त नहीं। सो समझ लीजिए कि हमने धरती की कहानी लेकर एक तस्वीर बनाई।

एक-एक करके सारी बत्तियाँ बुझ गईं। परदे पर उग आई अन्तहीन शून्य की परछाईं। उस शून्य में हमारा सूरज और सूरज जैसे बहुतेरे चमकते हुए नक्षत्र चक्कर काटते हुए दिखाई दिए। उनकी चमक-दमक और रंग-रवैये की पूछिए मत! एक-एक नक्षत्र मानो दहकती आग का एक-एक गोला हो!

यह झाँकी बदलती है। अचानक एक दूसरा नक्षत्र कया-

मत की रफ्तार लिये सूरज की ओर दौड़ता दिखाई देता है। उसमें इस गजब का खिचाव है कि देखते-ही-देखते सूरज का जलती हुई गैस का शरीर फूल-फूल उठता है और उस तनाव को न सह पाने के कारण सूरज का एक हिस्सा टूटकर छिटक जाता है। शक्ल हो जाती है परवल जैसी—नोकदार दोनों किनारे, पेट मोटा। लेकिन उस झपटटाबाज नक्षत्र की फिर वहाँ सूरत नहीं दिखाई दी। पता नहीं इतने ही में वह कहाँ निकल भागा। सूरज का जो हिस्सा छिटका, वह सूरज के ही चारों ओर जोरों से चक्कर काटने लगा। घूमते-घूमते उसके नौ टुकड़े हो गए। कहना फ़िजूल होगा कि यही नौ टुकड़े सूरज के नौ ग्रह हैं।

इन ग्रहों की परछाईं धुँधली होती हुई परदे से गायब हो जाती है और तब केवल हमारी धरती तेज प्रकाश लिये दिखाई देने लगती है—उसके निहायत बचपन के दिनों की झाँकी।

बचपन के दिन भी उसके कैसे नटखटपन के बीते हैं! अभी-अभी वह सूरज के शरीर को फोड़कर बाहर आई है, इसलिए वह भी एक उबलती हुई गैस का गोला ही है। उसमें जो भी है, सब गैस की ही शक्ल में है। पिघला हुआ भी कुछ नहीं है, फिर कुछ जमा हुआ हो, यह सवाल ही कहाँ उठता है।

ताप बिखेरना हर गरम चीज़ का स्वभाव होता है। ताप बिखेरते-बिखेरते अन्त में वह ठण्डी पड़ जाती है।

धरती की ऊपरी सतह की गैस भी ठण्डी पड़ने लगी।

ऐसे समय उसकी छटपटाहट और बेचैनी का क्या कहा जाय ! कोई मुश्किल सवाल बनते-बनते रह जाय और पन्ने-के-पन्ने कट-कर बरबाद होते चले जायँ, इसमें जो बेकली और तड़प किसी को हो सकती है, ठीक वही। गैस का चोला बदलकर लेते-लेते भी वह नया रूप नहीं ले पा रही थी। केवल तोड़-फोड़, काट-छाँट, उलट-पुलट ! कभी तो एक अगम अगाध खाई निकल आई और फिर उसी में अनेक आकाश-चूमते पहाड़ों ने सर उठाया। पहाड़ों की गुफाओं में लपलपाती लपटें निकलने लगीं। फिर वे पहाड़ दुबक गए; वहाँ महादेश हो गया। इस तरह होते-हवाते एक दिन धरती की ऊपरी सतह ठण्डी हो गई। ठण्डी होकर सिकुड़ने भी लगी, जैसे गरम दूध पर पड़ी मलाई सिकुड़ती है। लेकिन धरती के भीतर वैसी ही भयंकर गरमी उस समय भी बनी रही। पहले से कुछ ठण्ड ज़रूर पड़ने लगी, लेकिन इतनी ठण्ड नहीं हो सकी कि कुछ जम सके। वह तब भी खलबल खौलती ही रही और कभी-कभी धरती की जमी परत को चीरकर बलबलाकर, पिघली आग बाहर निकलती रही।

गाढ़ी बदलियों से धरती घिरी रही। घनघोर अँधेरा। वैसे बादल और अँधेरे को फाड़कर सूरज की रोशनी का आना मुश्किल था।

इसके बाद झमाझम लग गई झड़ी। पानी जो पड़ना शुरू हुआ तो थमने का नाम नहीं। बारिश और बारिश ! पहले तो धरती की पीठ पर पानी रह ही नहीं सका। पड़ा नहीं कि भाप बनकर ग़ायब। अब भी धरती पर इतनी गरमी

बाकी थी। धीरे-धीरे धरती की वह गरमी गई, पानी रुकने लगा, रुकते-रुकते खंदक-खाई भर गईं, समुद्र बन गया, महा-समुद्र बन गया। समुद्र बना, लेकिन गरम पानी का। उस समय कोई शौकीन अगर अपने जहाज़ से सैर को निकल पड़ता तो थोड़ी दूर तक जाते-जाते उसका जहाज़ जलकर राख हो जाता।

और इस तरह पृथ्वी पर उथल-पुथल होती रही, बनना-बिगड़ना चलता रहा, न जाने कितने दिन तक। दिन क्या, बरस, करोड़ों बरस तक। कोई डेढ़ सौ करोड़ बरस इस तरह निकल गए।

परदे पर मिट्टी-पानी की मिली-जुली जो धरती अब दिखाई पड़ी, वह हमारी आज की धरती से बहुत हद तक मिलती-सी है। इतने अरसे में बहुत सारी गैस गल गई। उससे अनेक गढ़े भर गए और समुद्र लहराने लगा। हकीकत में उस गैस में था क्या? उसमें था लोहा, उसमें था निकल, उसमें थीं ऐसी ही जाने कितनी और चीज़ें। इन सब चीज़ों के मेल से बहुत-सी नई-नई चीज़ें बन गईं।

इस तरह गैसों का रूप बदल गया। कुछ तो गलकर पानी में मिल गईं, कुछ जमकर पानी पर तैरने लगीं। कुछ ऐसी भी रहीं, जो न तो जमीं, न पिघलीं। ऐसी गैस गैस होकर ही धरती के चारों ओर घिरी रही। उस किस्म की गैस आज भी हमारी हवा में मौजूद है।

तस्वीर देखते हुए काफी देर हो गई। अब परदे पर से आँखें हटा लें, नहीं तो आँखें थक जायँगी, सिर दुखने लगेगा। अभी इतना ही रहे। काफ़ी कुछ हम देख भी चुके।

इतना हम सभी जानते हैं कि धरती पर तीन हिस्सा तो पानी है, एक हिस्सा ज़मीन।

एक मज़े की बात बताएँ! एक ग्लोब लेकर उसे धीरे-धीरे घुमाते रहिए। यह भी सोचते जाइए कि धरती का तीन हिस्सा पानी है, एक हिस्सा ज़मीन। देखते-देखते तुरत पता चलेगा कि ज़मीन का जितना हिस्सा है, सब गोलाई के ऊपर की ओर जमा है और पानी का सारा हिस्सा नीचे की तरफ जा सिमटा है। गरज़ कि ज़मीन जितनी है, ऊपर की ओर है और समन्दर जितना है, सब नीचे के आधे भाग में है।

एक और भी बात देखने में आएगी। वह यह कि जितने भी महादेश हैं, सबका निचला हिस्सा पतला होता हुआ समन्दर में जा घुसा है।

चाहें तो एक और मज़ेदार बात देख लीजिए। धरती के हर ज़मीन वाले हिस्से के ठीक पीछे कोई-न-कोई पानी का हिस्सा ज़रूर है। उत्तर अमरीका के पीछे क्या है? भारत महासागर। और प्रशान्त महासागर के ठीक उस पार क्या है? यूरोप और एशिया महादेश। इसके अर्थ यही हुए कि पृथ्वी के जिस ओर गढ़ा है, उसकी उलटी पीठ पर भराव है।

अपनी धरती की बाबत और भी छानबीन की जाय।

यह धरती पानी और ज़मीन की बनी है। ज़मीन का मामूली मतलब है मिट्टी। कोई और सोचकर कहेगा तो कह सकता है मिट्टी और पत्थर। मगर पंडित लोग इतने से ही खुश नहीं होंगे। उनका कहना है, धरती की ज़मीन तीन तरह की शिलाओं से बनी है। आप पूछ सकते हैं, पत्थर और शिला में आखिर कौनसा फ़र्क़ हुआ, ले-देकर मतलब तो दोनों का एक ही है।

नहीं, दोनों में फ़र्क़ है। आखिर ये पंडित लोग कुछ बच्चों का खिलवाड़ तो करते नहीं। उनके आगे एक-एक शब्द का गिना-चुना अर्थ है। इस हिसाब से वे न चलें तो उनका काम ही आगे नहीं बढ़ सकता। पत्थर कहने से हमारी समझ में ऐसी कोई चीज़ आती है, जो कि कड़ी और वजनदार हो।

लेकिन पंडित लोग कहते हैं, यह कोई बात नहीं कि शिला हर समय कड़ी और भारी ही हो। नरम और हल्की शिलाएँ भी तो होती हैं।

इस तरह वे कहते हैं, धरती की ज़मीन तीन तरह की शिलाओं से बनी है—परतनुमा शिला, अगन शिला और बदली हुई शिला।

मगर ये शिलाएँ आखिर हैं क्या बला? इनमें है क्या?

संसार के बाहर की कोई चीज़ भी उनमें क्या हो सकती है? जिन उनतीस पदार्थों से इस धरती का शरीर बना है, किसी-न-किसी रूप में वही सब इनमें हैं। कहीं अपनी मूल शक्ल में तो कहीं मिल-जुलकर, इन्हीं पदार्थों ने शिला की ये परतें बनाई हैं।

तीनों शिलाओं की अपनी-अपनी जन्म-कहानी है। परत-नुमा शिला का जन्म हुआ पानी से। नदी की धारा अपने वेग से बहुत कुछ को सागर तक बहा ले जाती है, जैसे मिट्टी, पहाड़ के टूटे हुए पत्थर के टुकड़े और चूरा, बालू। इनमें से जो कुछ भारी हैं वे पहले और जो उनसे हल्के हैं, वे उनके बाद कुछ आगे बढ़कर एक करीने से बैठ जाते हैं। इस तरह उनकी एक सहज परत-सी पड़ जाती है। उस पर दूसरी, फिर तीसरी और फिर चौथी परत-पर-परत पड़ती चली जाती है। बार-बार ऊपर से पड़ने वाली नई परतों के दबाव और पानी में के तेजाबों के प्रभाव से नीचे की परतें जमकर शिला बन जाती हैं। इस तरह की बनी परत परतनुमा शिला कहलाती है।

इन्हीं परतों में धरती के बीते दिनों का इतिहास बिखरा पड़ा है। ये परतनुमा शिलाएँ मानो महाकाल की घड़ियाँ हैं। जब धरती पर मनुष्य पैदा नहीं हुए थे, तब धरती के किस हिस्से की जलवायु कैसी थी, कहाँ कैसे जीव-जानवर बसते थे, इन सारी बातों की जानकारी इन्हीं परतों से होती है।

अगनशिलाओं से धरती के बचपन की बातें जानी जाती हैं—उस समय की बातें, जबकि रात-दिन धरती के पेट में से गरम और गली हुई गैस की लपलपाती लपटें रह-रहकर बाहर निकला करती थीं। वही जलती हुई लपटें बाहर आकर जम गईं और अगनशिला बनीं।

हमारे देश भारत का सारा निचला हिस्सा, समूचा दक्खिनी भाग, ऐसी ही अगनशिलाओं का बना है।

मूल रूप में शिलाएँ यही दो तरह की हैं—परतनुमा और अगनशिला। पानी, ताप और दबाव से जब इनकी शक्ल में कुछ हेर-फेर हो जाता है, तो उसे हम बदली हुई शिला कहते हैं।

टीन-के-टीन घी बिकते हैं। भरे हुए टीन में घी कैसा है, इसकी पहचान कैसे की जाती है? सयाने लोग उसमें ऊपर से नीचे तक एक लम्बी सींक डाल देते हैं। उसी सींक को ऊपर खींचकर घी का स्वाद, गन्ध, बढ़िया-घटिया, सब पता लगा लेते हैं।

धरती के भीतर क्या है, यह देखने के लिए भी वैसी ही कोई सींक चाहिए। लेकिन सींक खूब मजबूत हो, तेज धार वाली और नोकदार हो और काफ़ी लम्बी हो। उसमें मील के निशान भी लगे हों।

उस सींक को एक बार धरती के गहरे पेट में नीचे तक डालकर, ऊपर खींच लें तो हम पाएँगे कि उसमें गला हुआ गरम लोहा और निकल लगा हुआ है। यही दो धातुएँ सबसे ज़्यादा वज़नी हैं। सबसे ज़्यादा भारी होने के कारण वे एक-बारगी नीचे जा पड़ी हैं। अगर हम धरती को एक गुठलीदार फल मान लें, तो उसकी गुठली यह लोहा और निकल ही होंगे। फ़र्क़ इतना ही होगा कि वह गुठली होगी पिघली हुई।

बनावट में यह गुठली गेंद-सी गोल है, जिसका घेरा है चार हज़ार मील।

इस गुठली पर जो पहली परत है, उसे बैरिस्फियर कहते

हैं। इसकी गहराई दो हज़ार मील है। इसमें लोहा, निकल तथा और भी कई तरह की शिलाएँ हैं। इस परत की गरमी का कुछ ठिकाना नहीं है; बेहद गरम है! लेकिन गरम होते हुए भी ऊपर की परतों के भारी दबाव से ये शिलाएँ तह में जम गई हैं।

इसके बाद की परत ज़्यादा गहरी नहीं है। वह कई चीज़ों की मिलावट से बनी है।

इसके ऊपर वाली परत का नाम है लिथोस्फियर। लिथो का मतलब है शिला, यानी इसे शिलामय परत कह सकते हैं। इस परत की गहराई २५ से ३० मील की होगी। पंडितों का कहना है, जब लोहा-निकल जैसी वज़नी चीज़ें तह में नीचे बैठने लगीं, तो उनसे हल्की चीज़ें जम-जमकर ऊपर तिर आने लगीं। यह शिलामय परत जो है, वह उन्हीं हल्की शिलाओं से बनी है। इस परत की दो और उप-परतें भी हैं—पहली है लोहे की खान, दूसरी ग्रेनाइट शिला।

इसके बाद की परत पानी की है। नद, नदी, सागर, महासागर, यह सब जलमय परत है। इनकी गहराई ढाई मील की है। धरती का कोई समुद्र ज़्यादा गहरा है, कोई कम।

सबसे ऊपर वाली परत को हम वायुमण्डल कहते हैं। इसकी गहराई २०० मील है।

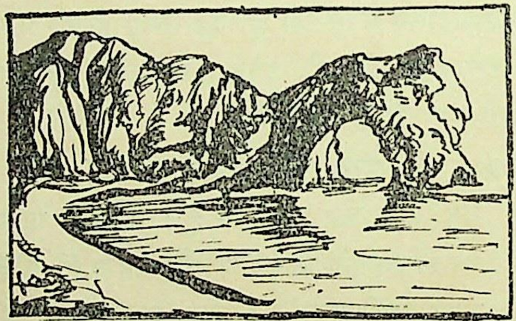
इतनी जानकारी के बाद भूकम्प का भेद जानना आसान होगा।

धरती का ऊपरी हिस्सा ठण्डा होकर शान्त हो गया है। लेकिन उसका भीतरी भाग? भीतर गली हुई बेहद गरम चीज़ें

कैद हैं। पिटारे में बन्द साँप जैसे फुफकारता और बाहर निकल पड़ने को बार-बार गुस्से से सर मारता रहता है, वैसे ही अन्दर की कैद चीज़ें बागी बनकर बार-बार बाहर निकलने की जी-तोड़ कोशिशें करती हैं। समय-समय पर जो तोड़-फोड़कर बाहर निकल आती हैं, वही जमकर अगनशिला बनती हैं।

धरती के सब पहाड़ उम्र में समान नहीं हैं। बहुत से ऐसे हैं, जिनकी उम्र बहुत ज़्यादा नहीं है; अभी भी वे उतने सख्त नहीं हो सके हैं।

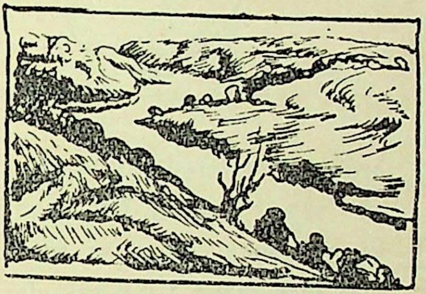
धरती के अन्दर जो उथल-पुथल मची है, उसके दबाव को सह सकना कम उम्र वाले पहाड़ों के लिए कठिन है। मामूली दबाव से ही वे मुड़-झुक जाते हैं; और कहीं दबाव ज़रा ज़्यादा हुआ, तो फटकर चौचीर हो गए। चौचीर होकर भी वे उसी



कुदरत की कारीगरी। पत्थर का अपने आप बना द्वार।

से चिपके रह जाते हैं। ऊपर से फिर कहीं दबाव पड़ गया तो उसके वे बहुत बड़े-बड़े टुकड़े फिसल पड़ते हैं। उनके गिरने का ही नतीजा है कि धरती धक्के से हिल उठती है। धरती के इस तरह काँप उठने को भूकम्प कहते हैं।

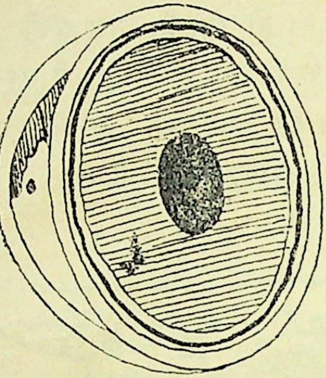
ऐसी उथल-पुथल धरती की कितनी गहराई में चल रही है जिससे भूकम्प हो रहा है, उस धक्के का ज़ोर कितना है, उसका कम्पन कहाँ तक जाता है, ये सारी बातें पंडित लोग बता सकते हैं। यह जानने का उन्होंने एक यन्त्र बनाया है। उस यन्त्र को सिस्मोग्राफ कहते हैं।



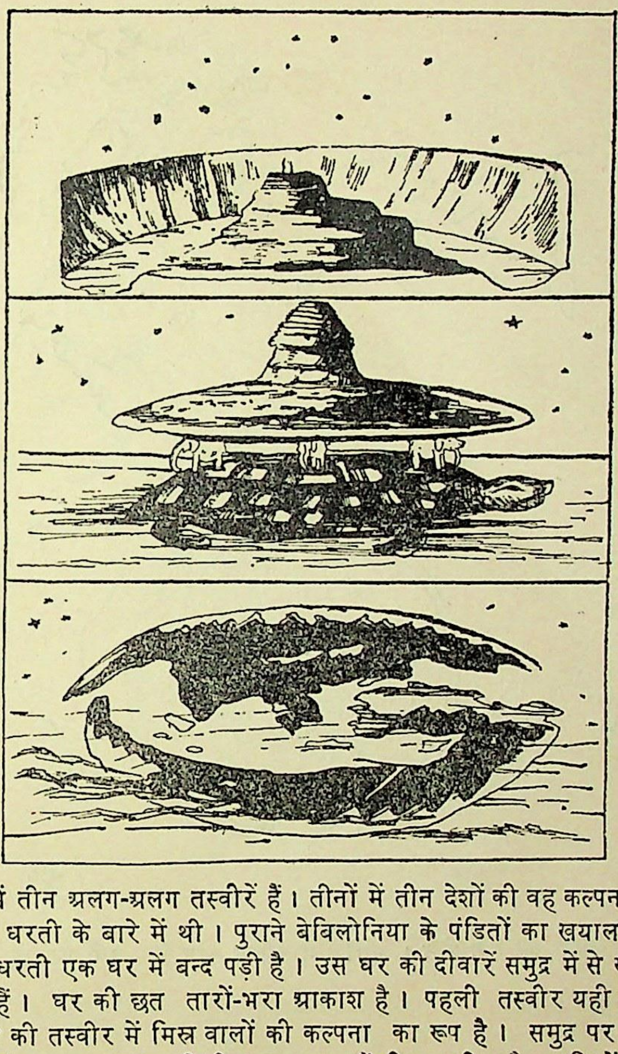
बाढ़ से डूबी हुई उपत्यका



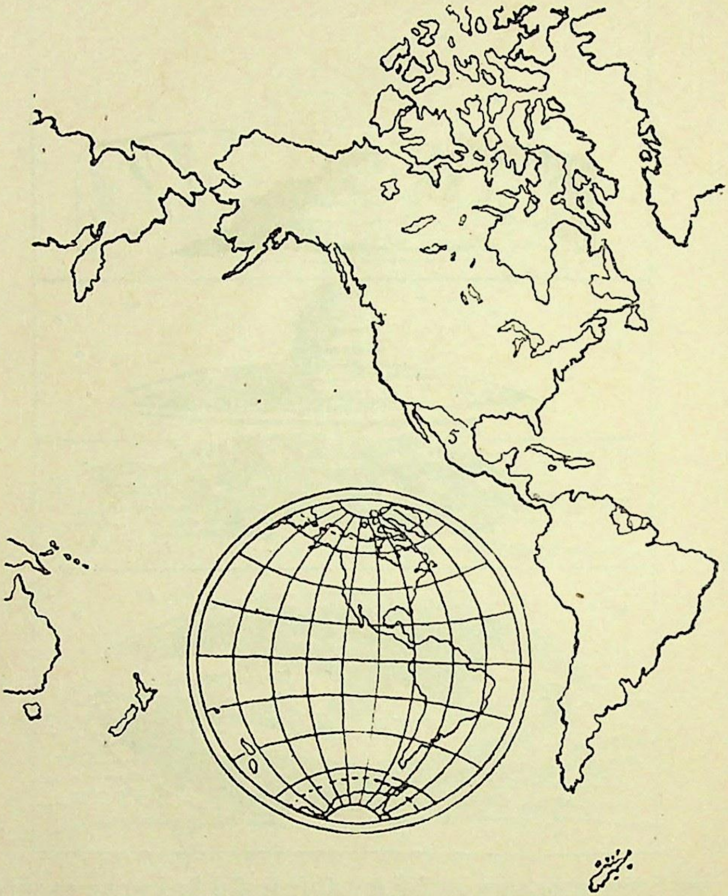
बरफ से बनी हुई उपत्यका



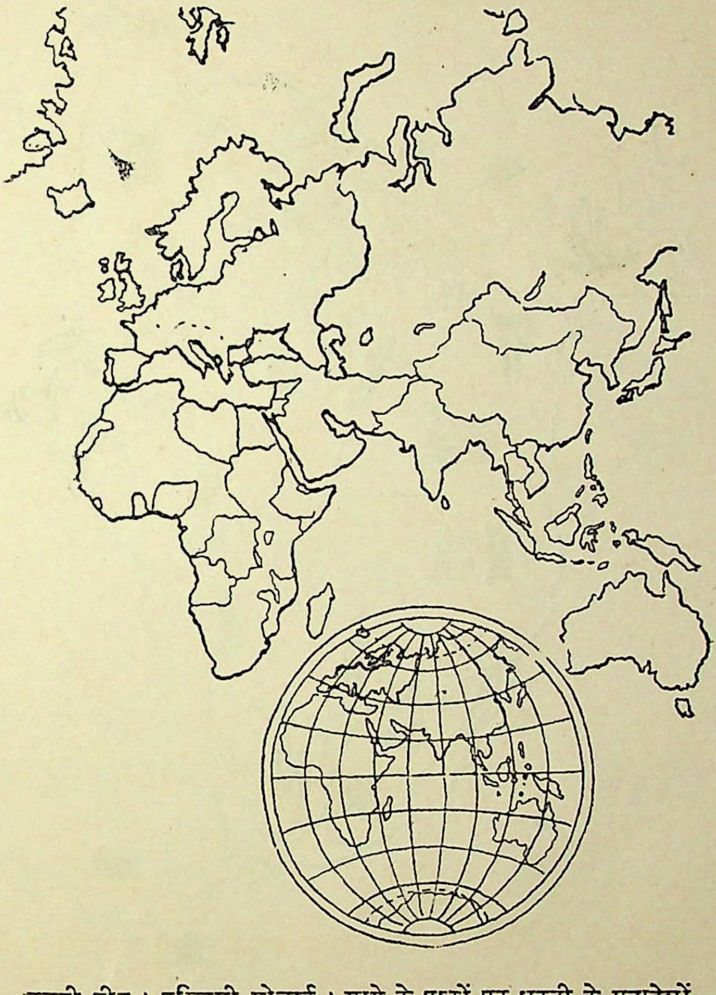
धरती को अगर नारंगी के समान बीचों-बीच काट दिया जाय तो ? तो हम पाएँगे कि उसके अन्दर पिघला हुआ धातु है। उतने हिस्से का घेरा है चार हजार मील। तस्वीर में वह हिस्सा घना काला बनाकर दिखाया गया है। उसके बाद की परत लोहे और निकल की मिलावट से बनी है। यह परत दो हजार मील मोटी है। उसके बाद एक पतली सी परत पार करके पत्थर की परत, कोई पच्चीस-तीस मील मोटी। उसके बाद पानी की परत, लगभग ढाई मील मोटी। सबसे ऊपर है वायु-मण्डल, लगभग दो-सौ मील का।



इसमें तीन अलग-अलग तस्वीरें हैं। तीनों में तीन देशों की वह कल्पना है, जो धरती के बारे में थी। पुराने बेबिलोनिया के पंडितों का खयाल था कि धरती एक घर में बन्द पड़ी है। उस घर की दीवारें समुद्र में से खड़ी हुई हैं। घर की छत तारों-भरा आकाश है। पहली तस्वीर यही है। बीच की तस्वीर में मिस्र वालों की कल्पना का रूप है। समुद्र पर तैर रहा है कछुआ, कछुए की पीठ पर सवार हैं तीन हाथी और हाथियों की पीठ पर है धरती। निचली तस्वीर ग्रीक लोगों के खयाल का रूप है। कोई पिचकी हुई थाली पानी पर तैर रही है।



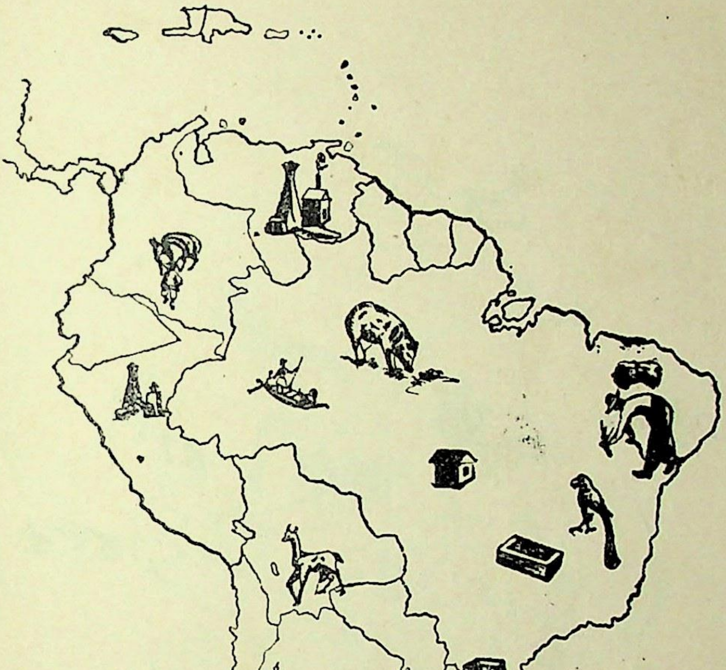
धरती की एक पीठ। भूगोल में इसका नाम है—पूर्वी गोलाई।



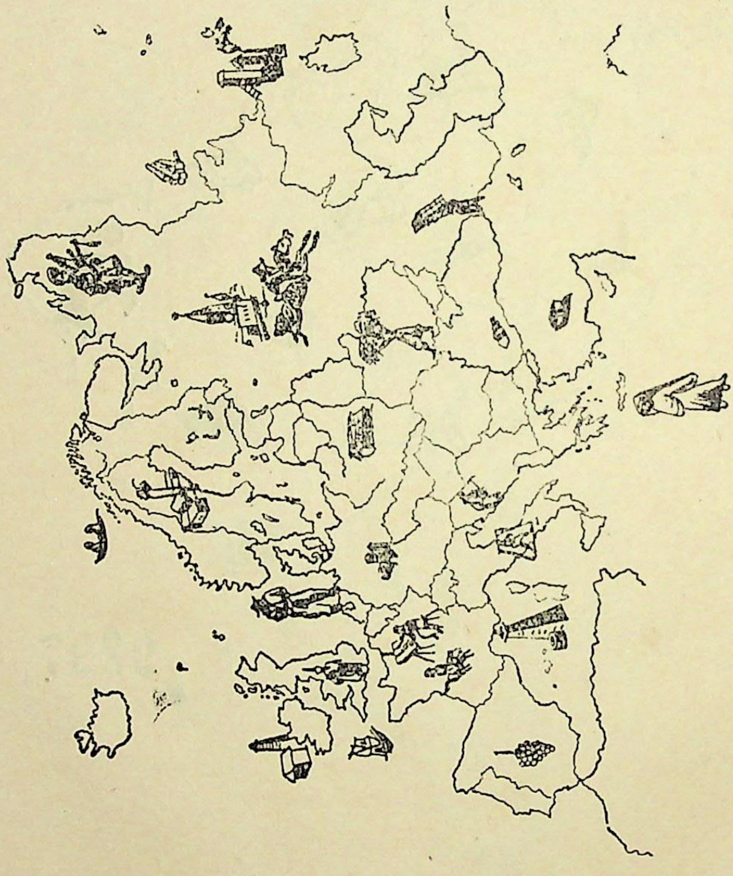
दूसरी पीठ । पश्चिमी गोलाई । आगे के पृष्ठों पर धरती के महादेशों के नक्शे हैं ।



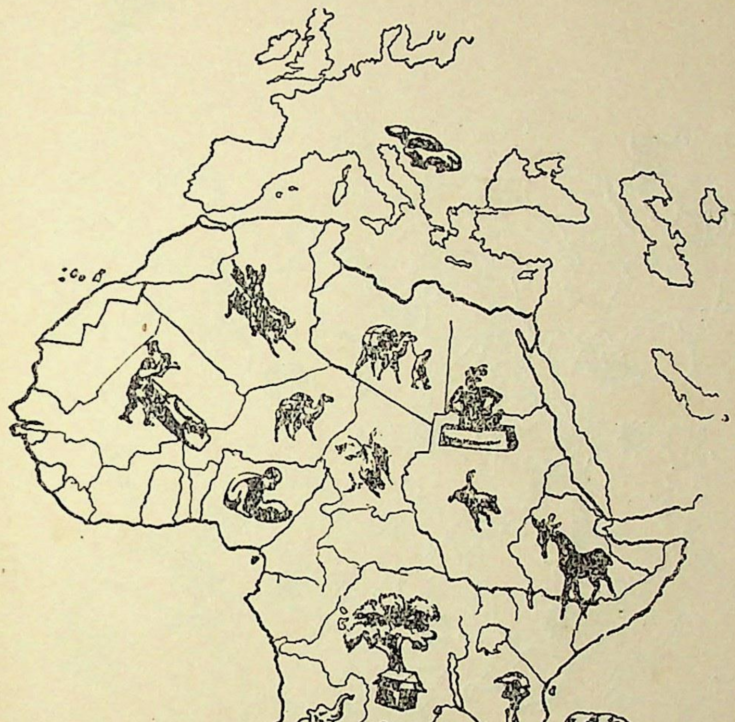
उत्तरी अमरीका



दक्षिणी अमरीका



यूरोप

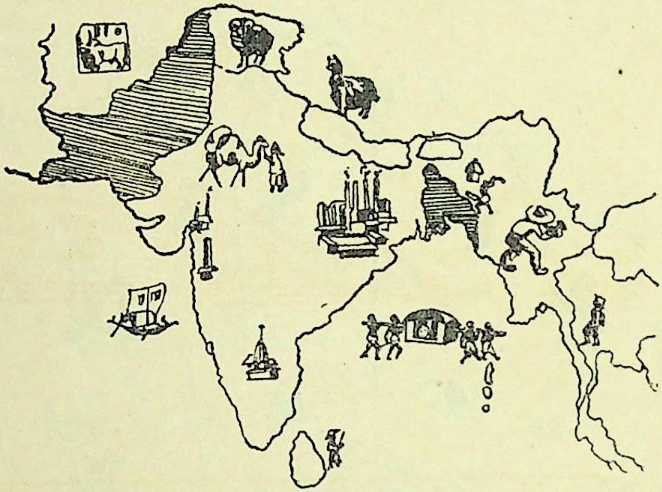


अफ्रीका


एशिया



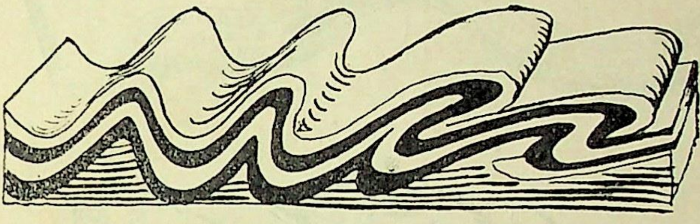
आस्ट्रेलिया

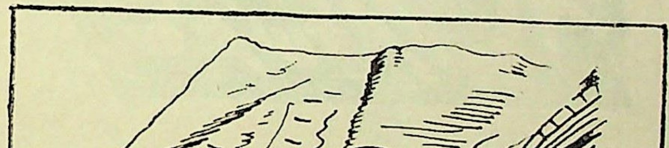


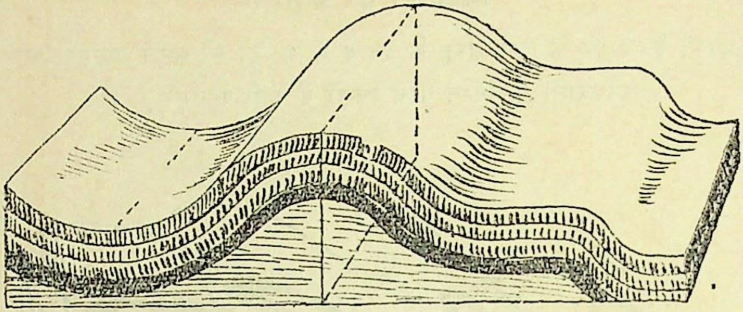
भारतवर्ष और पाकिस्तान। काली लकीरों वाला पाकिस्तान है।

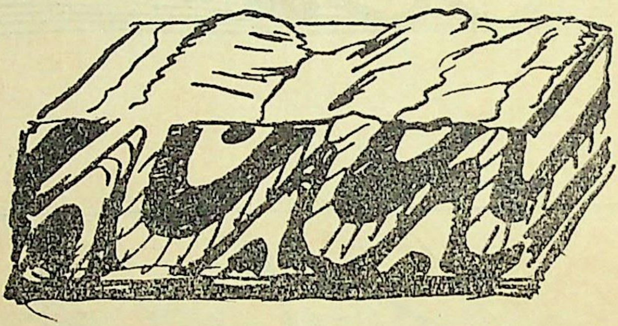
शिलाओं की कहानी

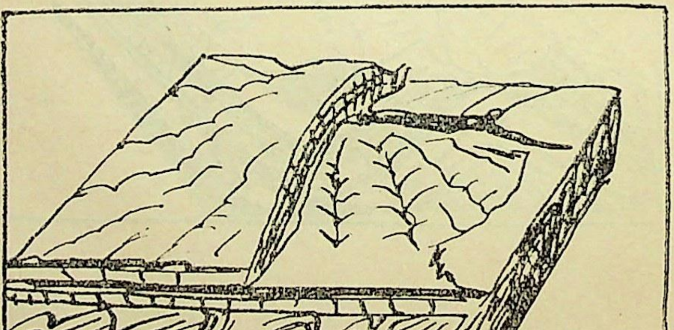
धरती के अन्दर के तरह-तरह के दबाव से पहाड़ों की सूरत क्या से क्या हो जाती है, निम्न पाँच चित्रों में उसी के नमूने हैं ।





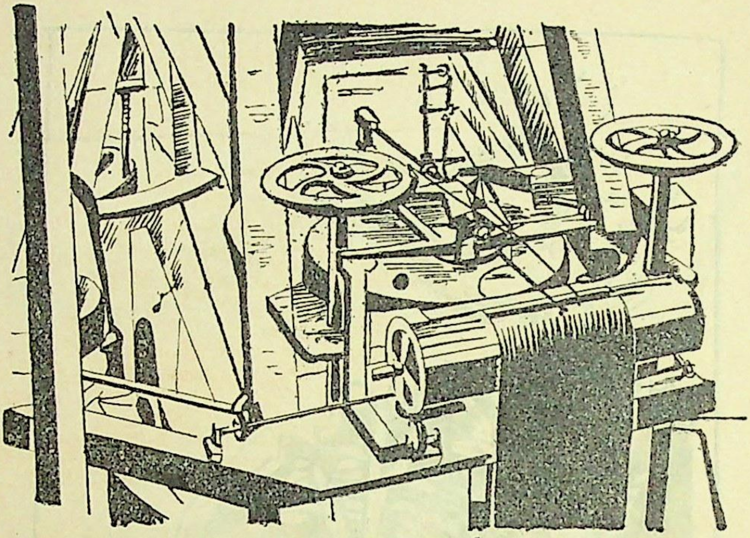




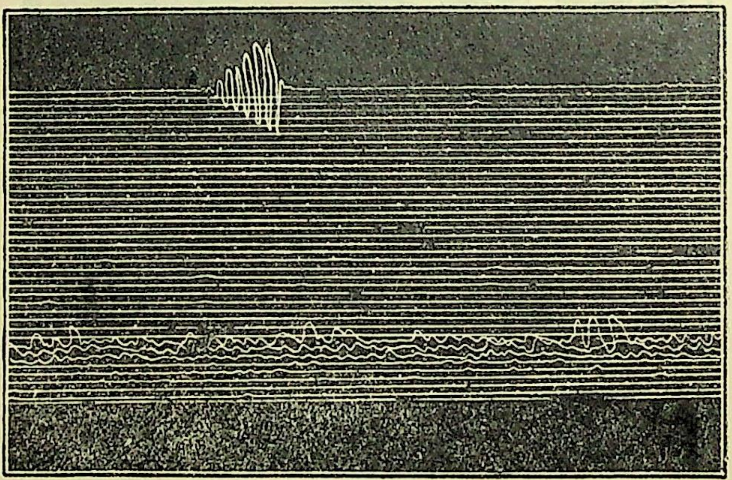




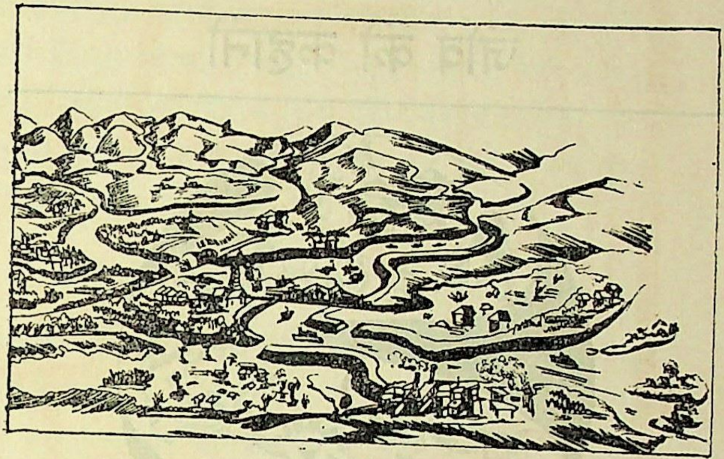
ज्वालामुखी : धरती के अन्दर से पिघले हुए धातु पहाड़ को तोड़-फोड़कर बाहर निकल रहे हैं। इसकी धमक से आस-पास के पहाड़ टूट-टूट पड़ते हैं; धरती डोल उठती है। धरती के इसी डोलने का नाम भूकम्प है।



इस यन्त्र का नाम है सिस्मोग्राफ। इसे भूकम्पों का जासूस कह सकते हैं। दूर-से-दूर भी भूकम्प हो, तो भी इसके काँटे काँप उठते हैं।

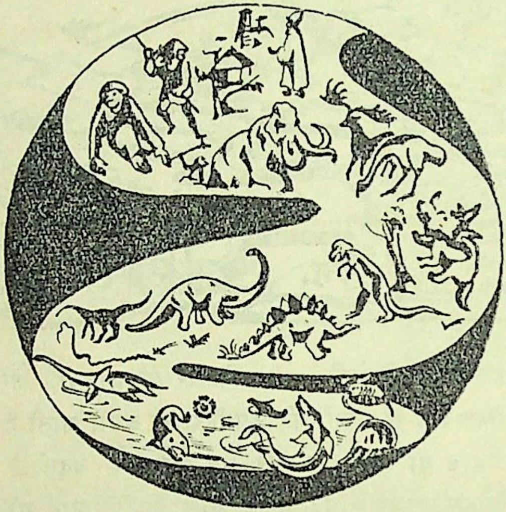


सिस्मोग्राफ के काँटे काँपते हैं तो उसमें लगे कागज पर कैसा क्या लिखा जाता है, इस तस्वीर में वही दिखाया गया है।



नदी चला करती है टेढ़ी-मेढ़ी—इस किनारे को तोड़ती, उसे जोड़ती। उसकी इस खिलवाड़ से धरती की ऊपरी शक्ल बदल जाती है। नदी की पैदाइश है पहाड़ या झील से और वह लपककर बढ़ती है समुद्र की ओर। अपनी इस यात्रा में वह कंकड़, बालू, मिट्टी, जाने और भी क्या-क्या वहा ले जाती है। वे सारी चीज़ें समुद्र के मुँह पर जमा होती हैं, जिससे डेल्टा बनता है।

जीव की कहानी



यह सुन्दर धरती ! महासागर, महादेश, टापू, पहाड़, समतल भूमि, अँधेरा-उजाला···कितनी फबती है ! लेकिन···

लेकिन इसमें प्राण नहीं; प्राण की कोई निशानी नहीं। अब तक डेढ़ सौ करोड़ साल की जिस पुरानी धरती को हम देखते रहे, उसकी सुन्दरता के क्या कहने, मगर प्राणहीन !

समुद्र को आदि जननी कहा गया है, क्योंकि प्राण की पहली जन्मभूमि वही है। उसी के पेट से धरती का पहला प्राण पैदा हुआ।

प्राण का जन्म !

इतने बड़े अचरज की घटना कब और कैसे घटी, कोई

नहीं जानता। पंडितों का इतना अनुमान-भर है कि अनेक प्रकार के मूल पदार्थों की खिचड़ी होती रही। कभी वैसी ही किसी मिलावट से समुद्र में एक प्रकार की साफ-सुथरी थल-थल-सी चीज़ बन आई। उसी का एक-एक बारीक कण पृथ्वी का पहला प्राण हुआ।

प्राण की पहचान क्या है? प्राण है और प्राण नहीं है—इन दोनों में फर्क क्या पड़ता है?

प्राण मानो आमद-खर्च की बही है। वह शरीर की ताजगी के लिए बराबर बाहर से खुराक जुटाने में लगा रहता है और दूसरी ओर से उसके शरीर की तन्दुरुस्ती घटती भी रहती है। आमद और खर्च, बढ़ना और घटना, प्राण की सबसे बड़ी पहचान यही है।

पृथ्वी के पहले प्राण-कण के शरीर में भी जमा-खर्च का वैसा ही लेखा था।

पंडितों ने इसके लिए जो एक शब्द कहा है, वह है प्रोटोप्लाज़्म। उनकी राय में धरती का प्रथम प्राण-कण प्रोटोप्लाज़्म का कतरा था।

यह प्रोटोप्लाज़्म फिर कौनसी चीज़ हुई? असल में यही प्राणमय पदार्थ है। लेकिन यह प्राणी नहीं है, गोकि सभी प्राणियों का शरीर इसीसे बना है। और ज़्यादा खोज-पड़ताल से पता चलता है कि यह कई मूल पदार्थों की मिलावट है—कार्बन, नाइट्रोजन आदि।

जो प्रोटोप्लाज़्म की बनी सबसे पतली और महीन देह है, उसका नाम है सेल। क्या छोटे और क्या बड़े, सभी जीवों का शरीर इन सेलों का बना होता है। बड़े-बड़े जीवों की देह में अनगिनत सेल होते हैं। एक-एक सेल एक ज़िन्दा हस्ती होता है।

सेल अँग्रेजी का शब्द है। हमारी भाषा में इसका मतलब होगा, दीवारों से घिरी तंग कोठरी, जैसी तंग कोठरी मजूरों की होती है। इस सेल का पता पहले-पहल सन् १६६७ में हूक नाम के एक अँग्रेज को लगा था। वे माइक्रोस्कोप से पेड़-पौधों के शरीर की खोज-पड़ताल कर रहे थे। माइक्रोस्कोप ऐसा यंत्र है, जिससे वे बारीक-से-बारीक चीज़ें देखी जा सकती हैं, जो आँखों की पकड़ में नहीं आतीं। इसे अपनी भाषा में हम अणु-दर्शक-यन्त्र कहते हैं। पेड़-पौधों के सेल चौपहल कोठरी जैसे होते हैं, इसलिए हूक साहब ने उसका नाम सेल रख दिया। कहीं उन्होंने किसी जन्तु के शरीर की जाँच की होती, तो यह सेल उन्हें चौकोर नहीं मिलता। सेल भी तरह-तरह के होते हैं।

सभी प्राणियों का शरीर सेल से कैसे बना होता है? बड़े-बड़े शहरों में मजूर का झोंपड़ीनुमा कमरा और बाबू का खुश-नुमा बँगला पास-ही-पास होते हैं। उस कमरे और बँगले में जमीन-आसमान का फ़र्क़! फिर भी एक बात में दोनों की समानता है। दोनों का ढाँचा ईंटों से ही खड़ा हुआ है। खुश-नुमा बँगला भी ईंट का और मजूर की कोठरी भी ईंट की।

जीवों के बारे में भी यही बात है। सबकी शक्ल-सूरत,

चेहरे-मोहरे अलग-अलग ज़रूर हैं, पर सबके शरीर एक जैसे सेलों के ही बने होते हैं।

ये जो मुन्शीजी हैं, मछली के बिना उनके मुँह में कौर नहीं धँसता। उनकी बीवी बेचारी, जैसे भी हो, जहाँ से भी हो, इतना इन्तज़ाम ज़रूर कर रखती है। आज ऐसा हुआ कि बिल्ली ताक में बैठी थी। ज़रा-सा मौका मिला और वह पकी-पकाई मछली चट कर गई।

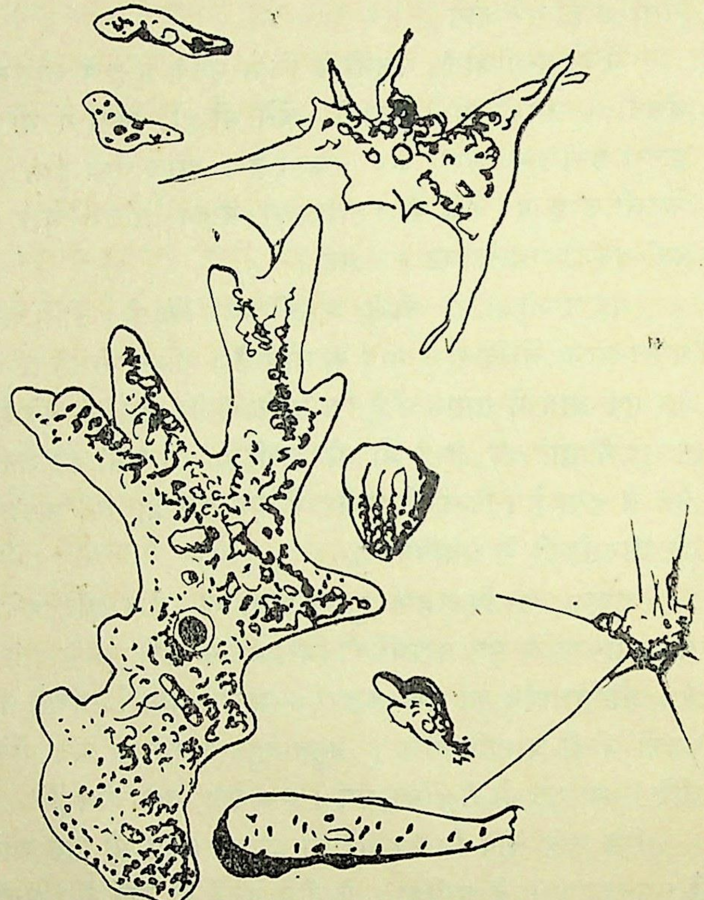
यह मुन्शीजी की बीवी, मछली और बिल्ली, तीनों तीन अलग-अलग जाति और नाप के जीव हैं। फिर भी तीनों की इस एक बात में समानता है कि उनके शरीर सेलों के बने हैं। संसार में छोटे-बड़े, जहाँ भी जो प्राणी हैं, उन सभी का शरीर सेल से बना है। किसी के शरीर में एक सेल है, तो किसी के दो और किसी के अनगिनत।

अच्छा, तो फिर हम पुराने दिनों की ओर लौट चलें। अनेक प्रकार के मूल पदार्थों की मिलावट से प्रोटोप्लाज़्म बना।

प्रोटोप्लाज़्म का एक कतरा—पहला प्राण! धरती की पहली जीती-जागती चीज़। बहुत-बहुत ज़माने के बाद धीरे-धीरे मिला उसको सेल का रूप। एक सेल, एक जीव!

ऐसे नन्हे जीव सिवार-भरे तालाबों में आज भी पाए जाते हैं। इनका नाम है अमीबा। ये नीचे दरजे के जीव हैं। अगले पृष्ठ पर दी गई तस्वीर में उसकी शक्ल बड़ी दिखाई गई है, जैसी माइक्रोस्कोप से दिखाई पड़ती है।

मगर यह भी क्या जीव है! न तो इसके हाथ-पाँव हैं, न मुँह-आँख!



ये हैं अमीबा। तस्वीर में इन्हें बहुत बड़ा बनाकर दिखाया गया है।

फिर भी मज़े की बात है कि यह पाँव न होते हुए भी भोजन की ओर टूटता है और बिना मुँह के खाता भी है। और अगली तस्वीर में यह भी दिखाया गया है कि यह नन्हा-सा शरीर टूटकर किस तरह दो हो जाता है और फिर उन टुकड़ों से भी दो-दो हो जाता है।

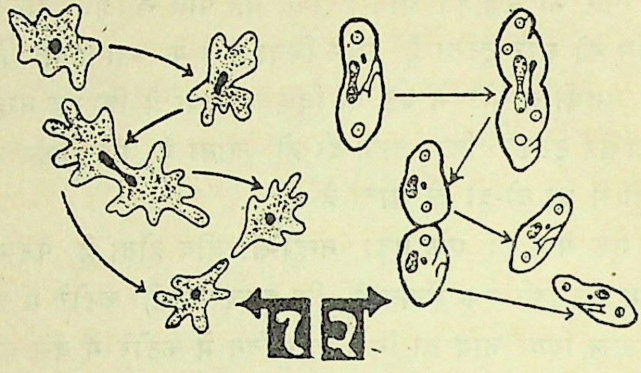
एक सेल का एक बड़ा नन्हा-सा जीव होता है पैरामीसियम। इसकी एक सिफ्त है कि आज किसी कटोरे में एक को डाल दिया जाय तो सिर्फ सात दिन में कटोरे में वैसे कोई दस लाख जीव किलबिलाते मिलेंगे। सेल इसी तरह एक से दो, दो से चार, चार से आठ, यानी बराबर दुगना होते-होते अपना वंश बढ़ाता रहता है।

सेल की बनावट और वंश बढ़ाने का ढंग ऐसा ही है। यही इस बात का जलता हुआ सबूत है कि वे ज़िन्दा हैं। वे अपना बचाव करते हैं, खाकर शरीर को कायम रखते हैं और अपने शरीर से अपने जैसे अनेक जीवों को जन्म देकर वंश बढ़ाते रहते हैं।

जीवन के दो सबसे बड़े काम हैं—अपना और वंश का बचाव। ये दोनों ही काम वे कर सकते हैं, इसलिए वे छोटे चाहे जितने ही हों, जीव ज़रूर हैं।

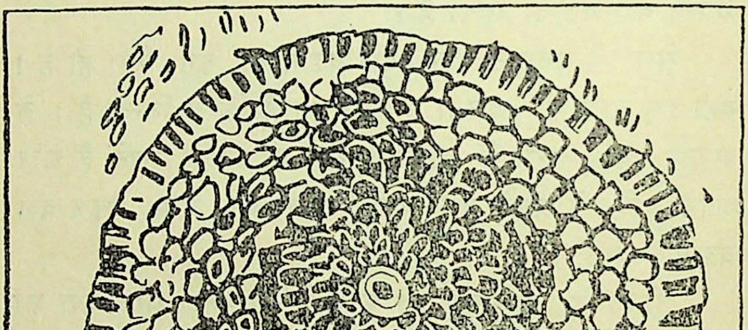
पहले युग में जीव कहने को एक सेल वाले इसी एक किस्म के जीव थे।

उसके बाद लाखों-लाख, करोड़ों-करोड़ साल तक जीवों की दुनिया में लगातार रद्दोबदल होते रहे। एक सेल वाले जीव से बहुत सेल वाले जीव आए। जीवों के शरीर में और-



७२

एक सेल किस तरह दो सेल बन जाता है, इसमें दो तरह के सेलों के नमूने से यही दिखाया गया है ।



एक से दो, दो से चार, चार से आठ, इस तरह एक से बहुत से सेल जन्म लेकर कैसी भीड़ लगा बैठे हैं ।

और अंग जुड़े, विविधता आई, नये-नये जीवों का जन्म हुआ, जिनमें आबोहवा में जीने के अनुकूल नये-नये अङ्ग आए। ऐसे-ऐसे नये जीव पैदा हुए जो ज़्यादा अनुभव कर सकते हैं, जिनका दिमाग बहुत तेज़ दौड़ता है। और इस तरह जीवों की जय-यात्रा आगे को बढ़ती चली गई। इससे अधिक रोंगटे खड़ी करने वाली कहानी और नहीं मिल सकती।

जीवों की दुनिया में सबसे बड़ी रचना है मनुष्य, जिसने अपने दिमाग और बाहुबल से कुदरत को अपनी मुट्ठी में कर लिया है और जिसे इस बात का अभिमान है कि हम पृथ्वी को जान सकते हैं, उसे बदल सकते हैं।

किन्तु जीव-जगत् की बढ़ती का यह सिलसिला कैसा है? कौनसा जीव दुनिया में पहले आया? उसके बाद? और उसके बाद? इन सबमें आपसी कोई सम्बन्ध भी है? और, पहले और बाद में आने की जो कड़ी है, उसका कोई नियम है क्या?

इन बातों का जवाब कौन दे?

इसका एक जवाब तो धर्म की पोथी में है। ईसाइयों की बाइबल में लिखा है, किसी एक शुभ दिन में भगवान् ने सभी जात के जीवों के नमूने बनाकर धरती पर रख दिए थे। उसमें एक जोड़ा मनुष्य का भी था, जिसके बाल-बच्चों से एक दिन यह दुनिया खचाखच भर गई।

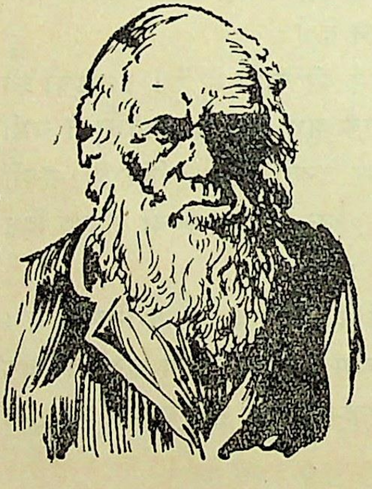
हिन्दुओं के पोथी-पुराणों में भी एक जवाब मिलता है। घनघोर अँधेरे में ब्रह्मा का जन्म हुआ। वे तप करने को बैठ गए। तप के बल से उनके एक-एक अंग से एक-एक जीव का जन्म हुआ।

धर्म की ओर से इस सवाल के जितने जवाब मिलते हैं सब एक-से हैं। किसी अनोखे जादू से एक साथ सब कुछ बन गया।

लेकिन विज्ञान का जवाब इससे बिलकुल उलटा है। उसका कहना है, यह सब कुछ बनते-बनते बना है, बदलते-बदलते बना है; छूमन्तर से कुछ भी नहीं हुआ। ऐसा बनने में खासा समय लगा है और बनते-बिगड़ते, बिगड़ते-बनते ऐसा बन सका है।

मगर हम लोग इन दो में से किसकी बात को मानें ? तय है कि जिसकी ओर से पक्के सबूत मिलेंगे, उसी की बात मानेंगे। तो सबूत तो विज्ञान के पास हैं—ढेरों सबूत और पक्के।

जिन्होंने सबसे पहले इसके सबूत पेश किये, उनका नाम है डारविन। "मेरा नाम चार्ल्स डारविन है। सन् १८०९ में मेरा



"हमारा यह ग्रह जैसे खिचाव के बँधे हुए नियम के मुताबिक धीरे-धीरे बदलता-बनता जा रहा है, ठीक वैसी ही एक मामूली सूचना से सबसे सुन्दर और सबसे अचरज की अनेकों सूरतें धीरे-धीरे बनीं, आज भी बनती चली जा रही हैं।"

—चार्ल्स डारविन

जन्म हुआ था। प्रत्येक वस्तु की छानबीन करने की मेरी आदत थी। एक बार जहाज से सारे संसार का चक्कर काट आया था। उसके बाद खोज-पड़ताल के काम में मैं डूब गया।"

किसी ने डारविन साहब के मुँह से उनकी जीवन-कहानी सुननी चाही थी। इस पर ऊपर की इन गिनी-गिनाई कुछ सतरों में उन्होंने अपना पूरा परिचय दिया था। मगर गिनी-चुनी इन्हीं कुछ बातों में डारविन के जीवन की सारी खूबियाँ समा गई हैं। इन सबका सार है खोज-पड़ताल और छानबीन की उनकी लगन।

स्कूली किताबों में डारविन का जी जरा भी न लगता। किताबें उन्हें वही पसन्द आती थीं, जिनमें जीव-जन्तु और कीड़े-मकोड़ों की कहानियाँ होतीं। वे जंगल में, खेतों में, नदी के किनारे घूमा करते। वहाँ से तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े पकड़ लाते; उनकी एक-एक बात की छानबीन करते रहते कि वे करते क्या हैं, क्या खाते हैं, बच्चे कैसे जनते हैं, आदि-इत्यादि।

स्कूल की पढ़ाई खतम हुई। पिता ने डॉक्टरी पढ़ने को भेजा। वहाँ भी उनका मन न रमा। लाचार, पिता भी क्या करें? बोले, पादरी हो जाओ। और क्या करोगे, लोगों को धर्म के उपदेश सुनाना।

सच पूछिए तो उनका कॉलेज तो वह चरोखर था, जहाँ भेड़ें चरती थीं। उनका कॉलेज था पेड़-पौधों, पंछियों, कीड़े-मकोड़ों के बीच। उनकी असली पढ़ाई तो कुदरत के कॉलेज में

चल रही थी। वे अपने मास्टर खुद आप ही थे।

उनकी तक़दीर खुल गई इक्कीस साल की उमर में। बीगल नाम का एक जहाज संसार की सैर को चलने वाला था। उसके जाने का एक मतलब था—वनिज-व्यौपार के नये रास्ते ढूँढ़ निकालना। जहाज़ के कप्तान की ख्वाहिश हुई कि साथ में एक ऐसा आदमी भी चले जो देश-विदेश की खास-खास बातें लिख लाए।

वह जहाज़ पूरे पाँच वर्ष तक समन्दरों की खाक छानता रहा। जब भी, जहाँ भी, जहाज़ किनारे लगे, डारविन चट उतर पड़ते और इस-उस चीज़ की छानबीन शुरू कर देते। एक-से-एक मज़ेदार बातें उन्हें देखने को मिलीं। उन्होंने देखा, पेड़ एक ही है, मगर अफ्रीका के पास के टापुओं में उसकी शक्ल और है, अमरीका के पास के टापुओं में और। कहीं यह देखा कि जानवर तो एक ही हैं, पर आज जो ज़िन्दा डोलते चलते हैं, बनावट में वे छोटे हैं, लेकिन मिट्टी के नीचे से उनकी हड्डियों की जो ठठरियाँ निकली हैं, वे बनावट में बड़ी हैं। इन बातों पर वे आकाश-पाताल सोचा करते। सोचा करते कि क्या इन सबमें कोई आपसी सरोकार भी रहा है।

एक जगह उन्हें किसी जानवर की ठठरी देखने को मिली। अजीब-सी थी वह। उससे आज के बहुतेरे जीव-जानवरों की एक साथ समानता थी, जैसे कई जानवरों की बनावट एक ही में मिल गई हो। रेलों के जंकशन होते हैं। किसी जंकशन से कई लाइनें निकलकर इधर-उधर को जाती हैं। यह ठठरी मानो जन्तुओं का जंकशन रही हो, जिससे कई तरह के

जानवर बनकर निकले हों और अपनी-अपनी राह लग गए हों।

ऐसी कोई भी खास बात डारविन की निगाहों से नहीं बच पाती। जो भी देखते, लिख लेते। इस तरह पन्ने-पर-पन्ने, बही के बाद बही भरते चले गए।

इन सारी बातों को देखकर और उन पर खूब विचार करते रहने से डारविन के मन में यह बात आई कि जीव-जगत् में कोई भी प्राणी दूसरे से बिलकुल अलग नहीं है, हरेक का दूसरे से कोई-न-कोई सरोकार ज़रूर है। सभी जीव मानो किसी एक ही किताब के अलग-अलग पन्ने हों।

पूरे पाँच साल के बाद डारविन ढेरों बही-खाता लिये जहाज़ से जमीन पर उतरे। उस समय जीव-जगत् की इनसे ज़्यादा जानकारी रखने वाला और कौन मिल सकता था? लेकिन उन्हें लगा, उतना जानना बहुत थोड़ा है, अभी और भी डूबकर देखने की ज़रूरत है, सीखने को अभी बहुत बाकी रह गया है। सो उन्होंने पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के बारे में और भी डूबकर जाँच-पड़ताल शुरू कर दी। पूरे तेईस बरस तक इसी जाँच में लगे रहे।

कुछ जानने की सच्ची प्यास ऐसी ही होती है। यही कहलाती है लगन!

तेईस साल बाद उनकी किताब छपकर निकली। निकली और उसी दिन सब हाथों-हाथ बिक गई। सारे संसार में शोहरत मच गई। पादरी-पुरोहित तो डारविन पर आग-बबूला हो उठे। उनके बिगड़ने की बात ही थी। बाइबल में लिखा है कि भगवान् ने जीवों को रातों-रात बनाया। मगर डारविन ने

यह साबित कर दिखाया कि ये सब बेकार की बातें हैं। असल बात यह है कि एक सिलसिले से धीरे-धीरे यह सब कुछ हुआ है, बनते-बनते बना है। अपने को कायम रखने के लिए प्रत्येक बार प्राणियों को एक-एक नया गुण, नई ताकत मिलती रही है, उनकी देह में समय-समय पर नये-नये अंग बनते रहे हैं। इस तरक्की की जड़ नये गुण, नया बल, नये अंग का पाते रहना ही है।

इसे ज़रा और सुलझाकर कहा जाय।

मछलियाँ पानी में बसती हैं। वह पानी कहीं सूख जाय तो? तो या घुट-घुटकर उन्हें दम तोड़ना पड़ेगा या ज़िन्दा रहने के लिए सूखी ज़मीन पर शरण लेनी पड़ेगी। ज़मीन पर आ रहने से ही तो ज़िंदा नहीं रहा जा सकता। ज़मीन पर साँस खींच सकने की जुर्रत होनी चाहिए। साँस खींच सकने के लिए फेफड़ों का होना ज़रूरी है। जिस किसी को भी साँस लेना-छोड़ना है, उसके लिए फेफड़े का होना निहायत ज़रूरी है। जब सूखे की नौबत आई, तब जो मछलियाँ अपने लिए फेफड़े बना सकीं, वे तो रह गईं ज़िन्दा और जिनसे यह न बन पड़ा, उनका नामोनिशान मिट गया।

लेकिन ज़रूरत पर जो इस तरह जी गईं, वे मछलियाँ न रहीं, बदल गईं।

कभी धरती पर बड़े-बड़े डरावने चेहरे वाले कुछ प्रकार के जानवरों का निवास था। उफ़, कितना विशाल और भयावना शरीर था उनका! एक-एक का वज़न चार-चार, पाँच-पाँच सौ मन! दुतल्ले मकान जितनी ऊँची थी गरदन उनकी। इन

जानवरों का नाम था डाइनोसोर। आजकल धरती पर उनके कहीं दर्शन नहीं मिलते। बहुत-बहुत पहले ही उनका नामो निशान मिट चुका है।

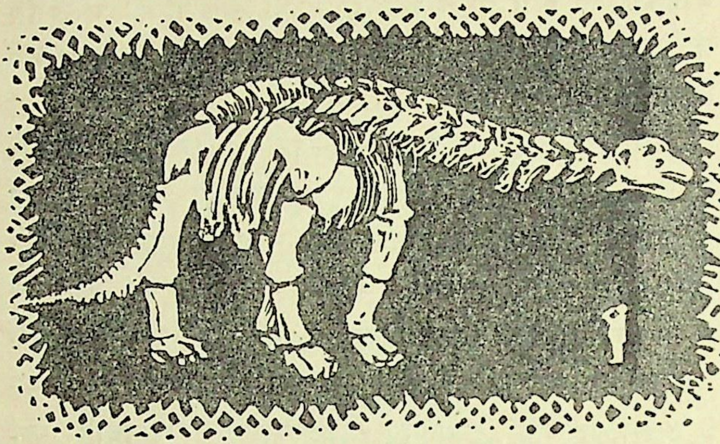
आखिर उनकी बुनियाद क्यों मिट गई? क्योंकि वे सब थे गरम और नम आबोहवा के जीव। कभी एकाएक बड़ा हेरफेर हो गया। खाई-खन्दक, नदी-नाले, समन्दर, सब सूख गए। ऊपर से उत्तरी हवा आई—नस के लहू तक को जमा देने वाली बरफ़ीली हवा। उस हालत में जीने के लिए उसी लायक गुण और ताकत चाहिए थी। उस गुण और ताकत का जौहर ये डाइनोसोर नहीं दिखा पाए। लिहाज़ा इनका खानदान एक-बारगी ही धरती से उठ गया।

हर युग में धरती नये-नये मसले हल करने को रखती रही है। आज़माती रही है कि कितना ताप जीव सह सकते हैं; सूखी बयार में टिक पाते हैं या नहीं। जिन जीवों ने छाती तानकर उसका मुकाबला किया है, वही जीव अपने को कायम रख सके हैं, नये हथियारों से होने वाले हमलों को रोका है। इस तरह वे बच ज़रूर गए हैं, मगर बदल गए हैं।

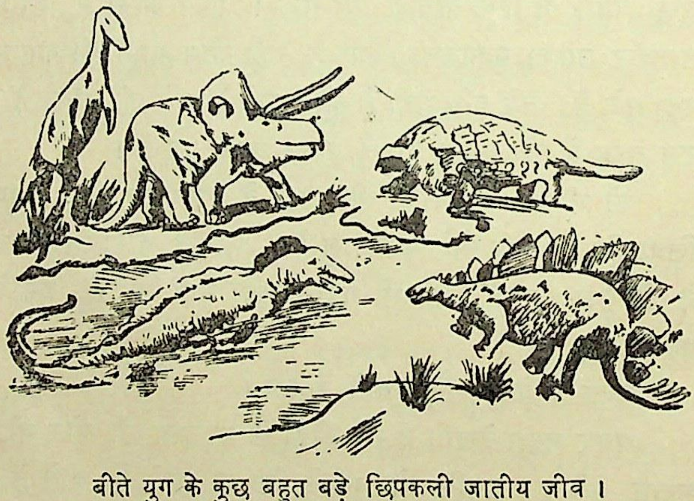
जो भी हो, इन बातों की सचाई के सबूत क्या हैं? मान लिया कि धर्म की बातें मनगढ़न्त हैं। लेकिन डारविन साहब ने जो कुछ कहा है, वह भी गढ़ी-गढ़ाई बातें नहीं हैं, इसीके कौनसे सबूत हैं?

सबूत इसके हैं—एक नहीं, अनेक।

अगर सबूत देखना है तो जीवों के आरम्भ की ओर ग़ौर करना पड़ेगा, जबकि वे माँ के पेट या अण्डे में होते हैं।



विशाल डाइनोसोर की ठठरी। जादूघर में देखने को मिल सकती है। ये गरम और नम आबहवा के जीव थे। जब धरती पर बरफ की बाढ़ आई तो ये ठण्ड के मारे मर गए।



बीते युग के कुछ बहुत बड़े छिपकली जातीय जीव।

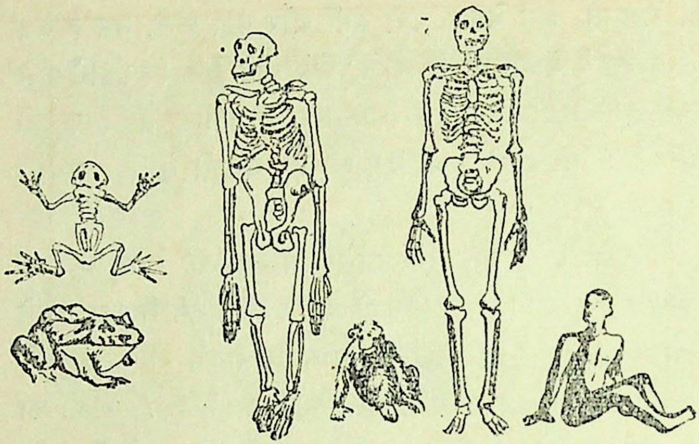
क्या आदमी, क्या मेढ़क, क्या मुर्गी और क्या कुत्ते, उस हालत में सब देखने में मछली के बच्चे जैसे होते हैं। फिर जैसे-जैसे वे बड़े होने लगते हैं, उनकी अपनी-अपनी खासियत निखरती आती है। तो इसके अर्थ यह हुए कि मछली से इन सबका सरोकार है।

यह भी देखने को मिलेगा कि आदमी के बच्चे जब माँ के गर्भ में रहते हैं, तो उनके भी बन्दर जैसी दुम निकल आती है और बदन पर खरगोश के समान मुलायम रोएँ उग आते हैं। आखिर वह दुम आगे चली कहाँ जाती है? रोओं का क्या होता है? दुम गिर पड़ती है, रोएँ झड़ जाते हैं। दुम होने का एक सबूत-भर रह जाता है, रीढ़ के नीचे की सख्त हड्डी।

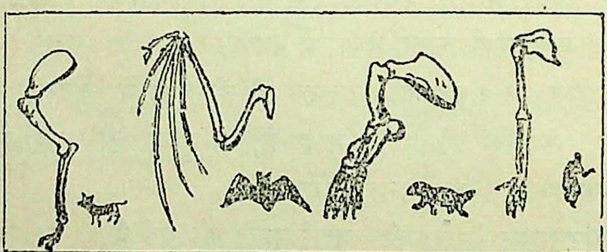
और सबूत चाहिए? फिर जीवों के ऊपरी ढाँचे को उतार-कर उसकी भीतरी बनावट पर ध्यान देने की ज़रूरत है। मेढ़क बन्दर और आदमी की ठठरियों पर ग़ौर कीजिए। तीनों में ज़्यादा कुछ फ़र्क़ नज़र आता है क्या?

और भी सबूत की ज़रूरत हो तो हाथ में कुदाली लेनी पड़ेगी, क्योंकि और जो प्रमाण हैं, वे पृथ्वी की परतों में हैं; काट-काटकर उन्हें देखना पड़ेगा।

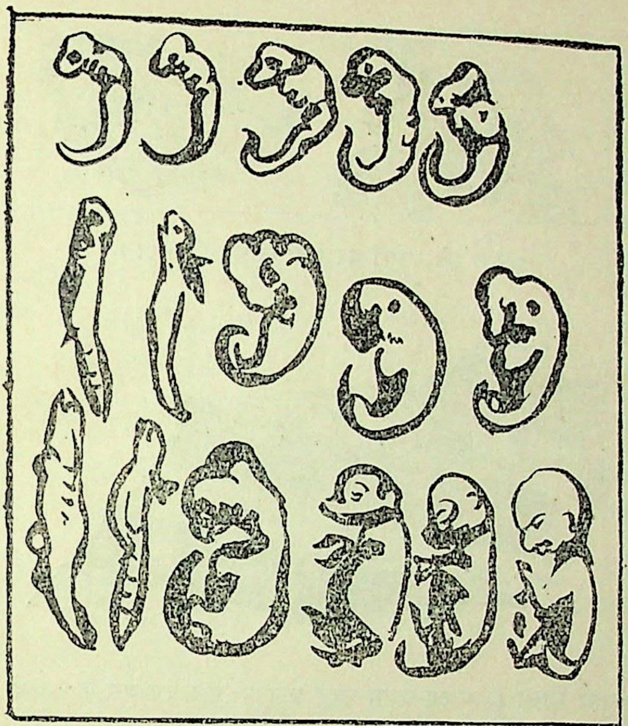
परतनुमा शिला की चर्चा पहले की गई है। यह शिला मुलायम और बारीक चीज़ों की जमावट है। ऊपर की दूसरी परत के दबाव से वह सख्त पत्थर बन गई है। जो इसके जानकार हैं, वे हिसाब लगाकर इतना भी बता सकते हैं कि कौनसी परत कितनी पुरानी है।



मेढ़क, गुरिल्ला और मनुष्य, तीनों की ठठरी में कुछ ज़्यादा फ़र्क़ नहीं है।

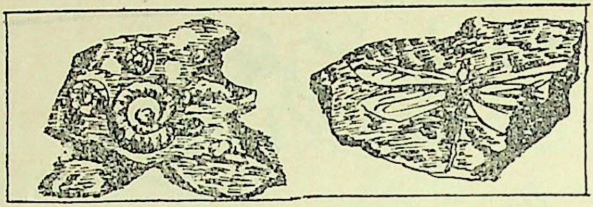


चार प्रकार के जानवरों की हड्डियाँ। बनावट सबकी लगभग एक-सी है। ठठरी या हड्डियों की समानता इस बात की गवाही देती है कि प्राणियों में आपसी सम्बन्ध है।

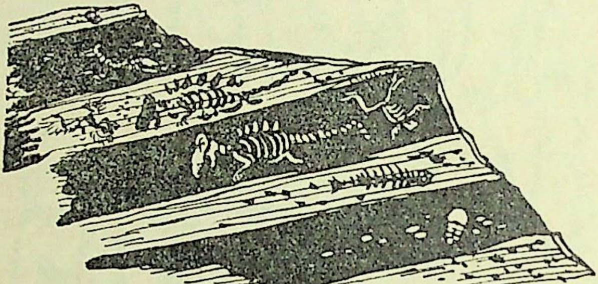


पैदा होने से पहले मछली, मुर्गी और बन्दर के बच्चे से मनुष्य के बच्चे में ज़्यादा फ़र्क़ नहीं होता। इससे आखिर क्या साबित होता है ?

पुरानी परत पर जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों की छाप पड़ी पाई जाती है, जैसी छाप मुहरों की होती है। यह पूछा जा सकता है कि ऐसी छाप पड़ी कैसे ? मिट्टी पर जीवों की हड्डियाँ, ठठरी, पेड़ों की जड़, पत्ते, ये सब तो गिरे पड़े रहते ही हैं। शुरू-शुरू में मिट्टी रहती है नरम। बाद में उस पर परत-पर-परत पड़ती जाती है। नतीजा यह होता है कि



धरती की परतों पर पड़ी जीवों की छाप।



परतनुमा शिला। अलग-अलग परत पर अलग-अलग युग के जीवों का फॉसिल दिखाई दे रहा है।

निचली परत जमकर पत्थर हो जाती है। उस परत पर जीवों की जो ठठरियाँ या पेड़-पौधे पड़े होते हैं, वे भी दब-दबाकर अपनी छाप छोड़ देते हैं। छाप बने ऐसे जीव-जन्तुओं को कहते हैं फॉसिल।

यही फॉसिल हमें बता देते हैं कि धरती पर कब कैसे जीवों का वास था।

परतों में सबसे पुरानी परत वही है जो परतनुमा शिला के सबसे नीचे है। उस परत पर जो फॉसिल मिलें, समझना

होगा कि उस समय धरती पर वैसे ही जीव-जन्तु थे।

इस तरह सबसे निचली परत से धीरे-धीरे ऊपर को आया जाय। हर परत में जो फॉसिल मिलें, सबके नमूने साथ लाए जायँ। ऊपर आकर किसी मेज़ पर सिलसिले से उन्हें सजाकर ग़ौर किया जाय।

इससे पता चलेगा कि सबसे निचली परत पर जो छाप पड़ी है वह महज़ एक सेल वाले जीव की है। इसके बाद अनेक सेल वाले जीवों की, जिनमें कुछ कीड़े-मकोड़े भी हैं। और बाद की परत में रीढ़ वाले जन्तुओं और कुछ पानी वाले जीवों की छाप पड़ी है। उसके बाद जो जीव धरती पर हिफ़ाज़त से अपनी छाप रख गए हैं, वे हैं पेट के बल रेंगने वाले जीव। उसके बाद आता है पृथ्वी की आयु का आधुनिक युग। इसमें अनेक तरह की चिड़ियाँ तथा बहुत तरह के दूध पिलाने वाले जानवरों की छाप है।

तीन तरह के सबूत इसके लिए पेश किये गए। एक सबूत तो हुआ ठठरियों का, एक हुआ परतों का और एक माँ के गर्भ का और अण्डों का। इतना ही नहीं, सबूत तो और भी हैं। इन्हीं सबूतों पर विज्ञान यह बताता है कि धरती के विकास का एक सिलसिला है, नियम है।

ज़िक्र केवल जीव-जन्तुओं का ही किया गया है। पेड़-पौधों की दुनिया में भी ऐसा ही हुआ। युग आते और बीतते गए, उनमें भी उलट-पुलट चलता रहा।

वह भी एक कहानी है।

डारविन के प्रयत्न से विकास का जो एक सिलसिला है, वह जाना गया। अजानी बातों की जानकारी हुई।

लेकिन इसीसे क्या काम खत्म हो गया?

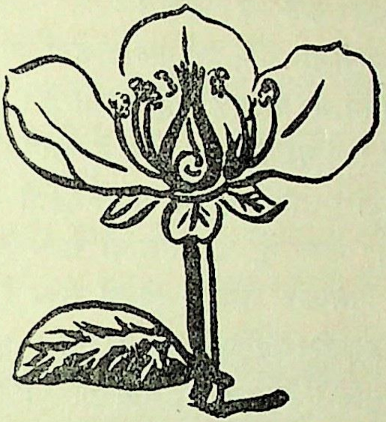
नहीं, पंडितों में से कुछ ने कहा, यहाँ से तो काम की शुरुआत हुई।

और, रूस के एक वैज्ञानिक ने पेड़-पौधों के बारे में छान-बीन जारी कर दी। नाम उनका था मिचुरिन। उन्होंने कहा, जब जीव-जगत् के विकास का भेद मालूम हो गया, तो बुरे पेड़ को अच्छे में क्यों नहीं बदला जा सकेगा? अंगूर के नन्हे दानों की जगह बड़े दाने क्यों नहीं फलाए जा सकते? जिस पेड़ में साल में एक ही बार फल लगता है, उसमें दो बार क्यों नहीं आएगा? ऐसा ज़रूर किया जा सकता है, और मिचुरिन ने दुनिया को ऐसा कर दिखाया।

ये बातें हुईं जानकारी की। कुदरत के कायदे-कानूनों को हम जान सकते हैं, मगर अपनी इच्छा से उन्हें बदल नहीं सकते, क्योंकि ये हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं है। किसी हद तक आदमी अपने लिए उनका लाभ उठा सकता है। विज्ञान का उद्देश्य भी यही है। कायदे-कानून जानकर अपनी पंडिताई की दून की हाँकते चलना काम का नहीं, काम की बात है उन नियमों को अमल में लाना, खुदाई पर खुद के करतब लगाकर प्रकृति को बदलना।

डारविन को पढ़ने का मतलब हमारी समझ में यही आता है कि प्रकृति को बदलकर उसे और भी सुन्दर, और भी उपयोगी तथा आनन्दमय कर देना है।

उद्भिद की कहानी



धरती के पहले प्राण का जन्म समुद्र में हुआ, सुनते-सुनते यह बात याद में जरूर अमिट हो गई होगी।

अब यह बताएँ कि समुद्र में जो पहला प्राणी पैदा हुआ, वह कोई जन्तु नहीं, बल्कि एक पौधा था—उद्भिद। पौधा कहते ही फल, फूल और पत्तों से भरी जिस चीज़ की तस्वीर हमारी आँखों में उठ आती है, वह पहला पौधा, धरती का वह पहला प्राणी, वैसा कुछ नहीं था। पौधा उसे नहीं भी कहा जा सकता है, पर पौधे का नन्हा अंकुर तो वह जरूर था। विकास के सिलसिले से उसी ने समय पर बहुत बड़े-बड़े पेड़ों को जन्म दिया।

नन्हे बच्चों की जब ज़बान खुलती है, तो शुरू में उनकी पूँजी मुश्किल से दो या तीन शब्दों की होती है। जैसे-जैसे

वे बड़े होते जाते हैं, उनकी अक्ल बढ़ती है, अनुभव बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे वे नई-नई बातें सीखते जाते हैं। ऐसा न हो तो अपने को वे ज़ाहिर कैसे कर सकते हैं ?

अब तक प्राणी या जीव, इसी एक शब्द से हम काम चलाते आ रहे हैं। जिसमें भी प्राण हैं, वही प्राणी है। जिसमें जीवन है, वही जीव है। मगर इस एक शब्द से आगे तो काम नहीं चलने का। हमारी जानकारी की पूँजी बढ़ती जा रही है। प्राणों के फैले हुए राज्य में, दरअसल दो राज्य हैं—जैसे सारे भारत में कुल मिलाकर चौदह। ये दो राज्य हैं—पेड़-पौधों की दुनिया और जीव-जन्तुओं की दुनिया। अब दोनों के अलग-अलग नाम तै न कर लें, तो आगे की बातों में अड़चन पड़ेगी। सो उसे अब हम इस तरह से जान लें—पेड़-पौधों की दुनिया उद्भिद-जगत् और प्राणियों की दुनिया प्राणि-जगत्। जगत् से गठ-बन्धन कर लेने से प्राणी का प्राणि हो गया। व्याकरण का यही नियम है।

तो हो गए उद्भिद और प्राणी।

इन दोनों में समानता क्या है ? समानता यही है कि दोनों में प्राण हैं।

और दोनों में फ़र्क क्या है ?

कोई भी कह देगा कि उद्भिद अपनी जगह से हिल नहीं सकता और प्राणी चल-फिर सकते हैं।

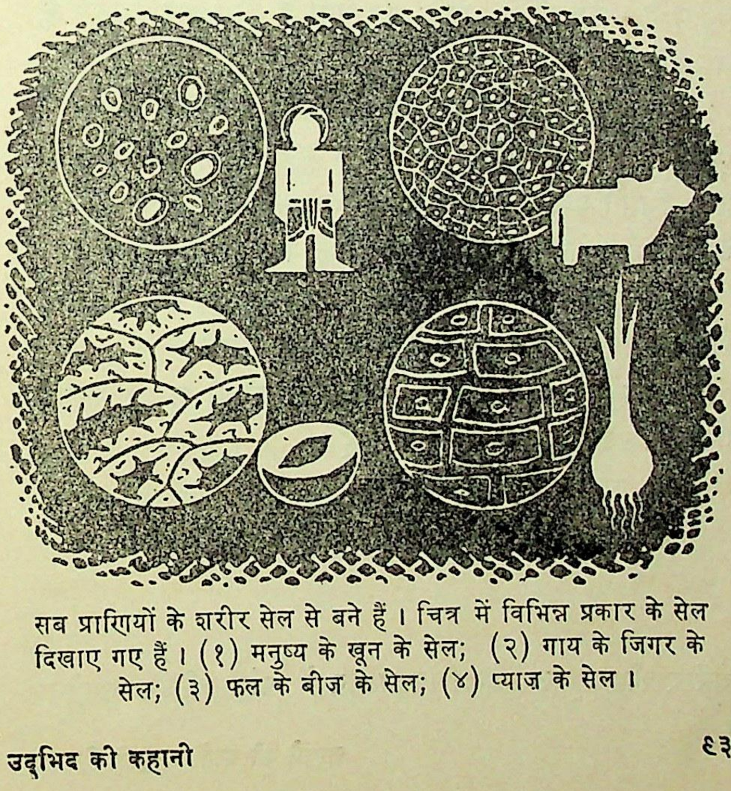
इसके सिवाय भी दोनों में कोई अन्तर है ?

हाँ, अन्तर है। उद्‌भिदों में हरियाली होती है। उनमें यह हरियाली क्लोरोफिल से आती है। क्लोरोफिल हरा होता है, इसलिए उद्‌भिद भी हरे होते हैं।

यह क्लोरोफिल क्या होता है ?

यह एक हरी-हरी-सी चीज़ है जोकि उद्‌भिदों के खास किस्म के सेल में होती है। उसी की हरियाली से पेड़-पौधे हरे-भरे होते हैं।

उद्‌भिद और प्राणी में और भी भेद हैं। भेद की कम-से-कम एक और बात कह दें। उद्‌भिदों के जो सेल होते हैं,



सब प्राणियों के शरीर सेल से बने हैं। चित्र में विभिन्न प्रकार के सेल दिखाए गए हैं। (१) मनुष्य के खून के सेल; (२) गाय के जिगर के सेल; (३) फल के बीज के सेल; (४) प्याज के सेल।

उनके बीच-बीच में दीवार होती है। ये चीज़ें एक तरह की कड़ी चीज़ की बनी होती हैं, जिसे सेलुलोज़ कहते हैं। प्राणियों के सेल में यह चीज़ नहीं पाई जाती।

उद्‌भिद और प्राणी !

प्राणों की दुनिया में उद्‌भिद का आना हुआ पहले। रिश्ते में प्राणियों के वे बड़े भाई हुए। माता-पिता के लाचार हो जाने पर जैसे छोटा भाई बड़े भाई के सहारे टिकता है और बढ़ता है, वैसे ही ये प्राणी उद्‌भिदों के ही सहारे ज़िन्दा हैं, बढ़ रहे हैं।

मतलब यह है कि उद्‌भिद ही हमेशा प्राणियों की खूराक जुटाते हैं। उनकी दुनिया मानो एक बहुत बड़ी अतिथि-शाला है। जितने प्रकार के जीव हैं, जितने मनुष्य हैं, सब उन्हीं के मेहमान हैं। मेहमान भी दो-चार दिन के नहीं, हमेशा के।

किन्तु दान में जो उद्‌भिद दाता कर्ण बने बैठे हैं, उन्हें आखिर इतना धन, इतनी दौलत कहाँ से मिली ?

बेशक यह खत्म न होने वाली पूँजी उनकी अपनी कमाई नहीं है, उनका दूसरा बड़ा दाता है।

वह बड़ा दाता है सूरज।

ज़रा इस लेन-देन का लेखा-जोखा समझा जाय।

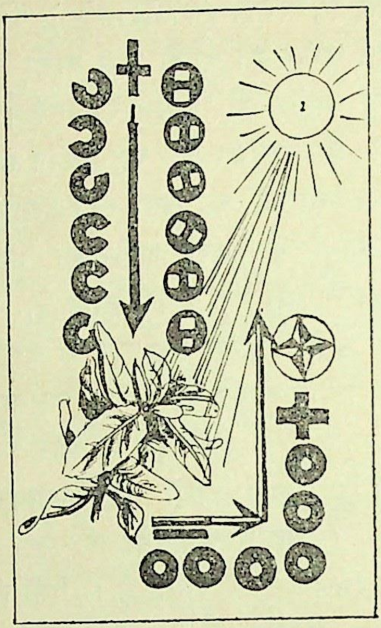
शरीर की तन्दुरुस्ती के लिए भोजन में पाँच चीजों का होना

जरूरी है—प्रोटीन, सफेदी (कार्बोहाइड्रेट), चर्बी, नमक और पानी। प्रोटीन शरीर की घटती रहने वाली ताकत को पूरा करता है और शरीर को दुरुस्त रखता है। हमारे शरीर के सेलों में जो प्रोटोप्लाज़्म हैं, वह प्रोटीन से ही बना है। शरीर का सेल इसी की बदौलत सही-सलामत रहता है। कार्बोहाइड्रेट कोयले की तरह शरीर का ताप जुड़ाता है। कोयले के जलने से जो गरमी पैदा होती है, इन्जन उसी से चलते हैं। ठीक उसी तरह कार्बोहाइड्रेट के जलने से जो गरमी होती है उसीसे हमारे शरीर का इन्जन चलता है।

यह प्रोटीन, यह कार्बोहाइड्रेट या और जो इस तरह के पदार्थ हैं, सभी कुछ मूल पदार्थों की मिलावट से बनते हैं। मिसाल के तौर पर यह कार्बोहाइड्रेट कारबन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन की मिलावट से बनता है। ऐसी ही मिलावटों से बनता है प्रोटीन। प्रोटीन की खास चीज़ है नाइट्रोजन।

अब यों लिया जाय कि ये सारी ही चीज़ें धरती की छाती में, कुदरत के खजाने में भरी पड़ी हैं। किन्तु सब-की-सब अपने असली और कच्चे रूप में हैं। लेकिन वे जैसी हैं उसी रूप में उन्हें खाने से तन्दुरुस्ती नहीं बन सकती। उन्हें खास-खास ढंग से तोड़-फोड़कर काम लायक बना लेना पड़ता है।

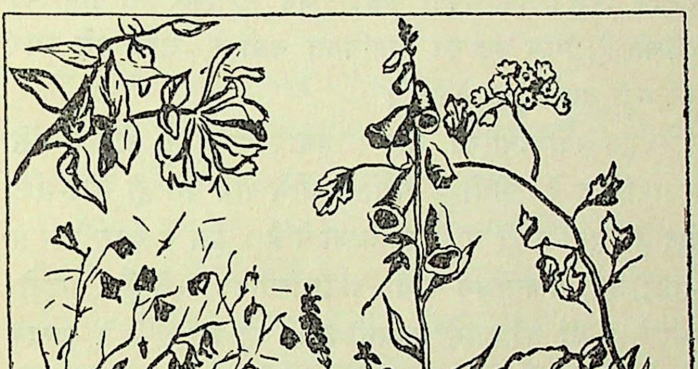
लेकिन उन्हें काम लायक बनाने की जो जुगत है, वह प्राणियों के वश की नहीं। यह अनूठा गुण तो उद्‌भिदों में ही होता है। सूरज की सुनहरी किरणें जैसे ही पौधों के हरे पत्तों को छू लेती हैं वैसे ही वे कच्चे माल प्राणियों के काम के बनने लगते हैं; उनसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चर्बी, यह सब तैयार



फोटो-सिन्थेसिस । हर पत्ते पर कार्बन-डाइऑक्साइड के छः और जल के छः अणु आ पहुँचे । क्लोरोफिल तो वहाँ पहले से ही था । सो सूरज की रोशनी पाते ही पत्ते के क्लोरोफिल वाले सेलों ने उनसे झट ग्लूकोज़ नाम की चीनी का एक, और ऑक्सीजन के छः अणु बना लिए ।

होने लगता है। सूरज की जोत की बदौलत जो यह अनोखा काम होता है, उसे कहते हैं फोटो-सिन्थेसिस यानी रोशनी के सहारे रचना।

अगर पूछिए कि ऐसा प्राणियों के बजाय पेड़-पौधे ही क्यों कर सकते हैं, तो इसका जवाब यही होगा कि उनके क्लोरोफिल वाला सेल है, जोकि प्राणियों के नहीं होता।



पेड़-पौधों के भोजन-घर का ज़रा मुआयना कर लिया जाय।

उनकी रसोई के लिए महज़ दो मामूली चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है—हवा और पानी।

पानी तो मिट्टी के अन्दर ही है। उस पानी में नाइट्रोजन फास्फोरस, पोटासियम, लोहा, गन्धक, मैगनेसियम, कैल्सियम जैसी बहुत सी चीज़ें मिली हुई रहती हैं। पेड़-पौधे मिट्टी के अन्दर दूर-दूर तक अपनी सैकड़ों जड़ें फैलाकर उस पानी को खींचते हैं; फिर धड़ की अनगिनत नसों के रास्ते उसे ऊपर की भट्ठी तक पहुँचा देते हैं।

अब रही हवा की बात। हमारे शरीर में रोएँ के जैसे हजारों छेद हैं, पौधों के पत्तों के नीचे-नीचे वैसे ही छोटे-छोटे छेद हैं। हवा इन्हीं में से आती-जाती है। हवा में खास तौर से नाइट्रोजन, ऑक्सीजन कार्बन-डाइऑक्साइड रहते हैं। नाइट्रोजन से पौधों की खासी दुश्मनी है। वह उन छेदों से अन्दर जाता भी है, तो उसी समय उसे बाहर निकल आना पड़ता है। पौधों को केवल कारबन की ज़रूरत रहती है, सो वे उसमें से कारबन को ही पोंछ-पाँछकर ले लेते हैं।

लेकिन केवल सामान जुट जाने से ही तो रसोई नहीं पक जाती, चूल्हा जलाने के लिए आग तो चाहिए ही। सूरज से आने वाली रोशनी में आग है, पर उससे चूल्हा कैसे सुलगाया जाय ? चूल्हे में सूरज की रोशनी से आग जलाने का भार है क्लोरोफिल का। वह किरणों से आँच जला लेता है। फिर क्या, उस भट्ठी में हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कारबन टूट-टूटकर प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट बन जाते हैं। इस तरह

पेड़-पौधों की रसोई तैयार होती है और वह खाना उनकी नसों के रास्ते सारे शरीर में फैल जाता है। ऐसे ही वे जीते हैं, बढ़ते हैं, और फैलते हैं। उसी खाने से पेड़-पौधों में फूल, फल, बीज लगते हैं, जिन्हें खाकर दूसरे प्राणी जीवित रहते हैं।

अगर पेड़-पौधों की दुनिया न रहती तो प्राणि-जगत् भूखों मर जाता।

भूखों ही नहीं, दम घुटकर मरता।

यह सुनने में अजीब सा लग रहा होगा; क्यों? पेड़-पौधे न हों तो प्राणियों का दम क्यों घुटेगा भला!

लेकिन दम घुटेगा। अगर हवा में ऑक्सीजन न हो तो कोई भी जीव ज़िन्दा नहीं रह सकता। हवा के साथ-साथ जीव साँस में ऑक्सीजन खींचता है और निःश्वासों से कारबन डाइ-ऑक्साइड को बाहर निकाल दिया करता है। यह कारबन डाइऑक्साइड जीवों के लिए बड़ा ही नुक्सानदेह है। आजकल एक कानून बनाकर सिनेमाघरों में बीड़ी-सिगरेट पीने की मनाही कर दी गई है। आखिर क्यों? आदमी, और दूसरे प्राणी भी, निःश्वास के साथ कारबन डाइऑक्साइड को बाहर निकाला करता है। बन्द घर में वह घुटता रहता है। फिर जहाँ आग जलती है, वहीं ऑक्सीजन जलकर कारबन-डाइ-ऑक्साइड तैयार होता है। नतीजा यह होता है कि छोड़े हुए निःश्वास और बीड़ी-सिगरेट से हवा में कारबन 'डाइऑक्साइड का औसत बहुत बढ़ जाता है, ऑक्सीजन बहुत कम हो जाता

है; साँस लेना मुहाल हो जाता है, दम घुटने लगता है। इसीलिए बन्द सिनेमाघरों में बीड़ी-सिगरेट पीने की मनाही कर दी गई है।

ऑक्सीजन सचमुच बहुत कीमती है, मगर हवा में उसकी औसत बड़ी कम होती है—पाँच हिस्से में लगभग एक हिस्सा। अगर ऐसा ही है तो लाखों-लाख बरस निकल गए अब तक तो उसे खत्म हो जाना चाहिए था और उसकी कमी से पेड़-पौधे तथा प्राणियों की दुनिया मिट जानी चाहिए थी। फिर भी ऐसा क्यों नहीं हुआ?

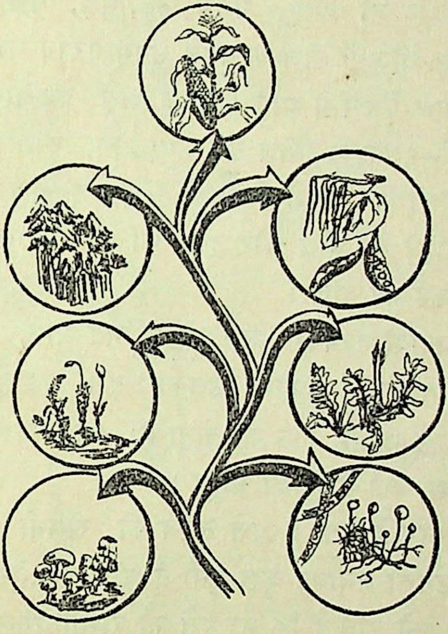
ऐसा नहीं हो सका, इन पेड़ पौधों की कृपा से। सूरज की रोशनी से पत्तों पर जब फोटो सिन्थेसिस का सिलसिला जारी रहता है, तब पौधे हवा के साथ जितना ऑक्सीजन खींचते हैं, वह सारा-का-सारा उनके काम नहीं आता। उसका ज़्यादा हिस्सा वह निःश्वास छोड़ते हुए निकाल देते हैं।

सार यह निकला कि प्राणी रात-दिन हवा में कारबन-डाइऑक्साइड छोड़ा करते हैं और पेड़-पौधे दिन-भर छोड़ते रहते हैं ऑक्सीजन। इस कारण हवा में ऑक्सीजन की कमी नहीं हो पाती, जीवों का काम चलता रहता है।

पेड़-पौधे हमारी बहुत तरह से मदद करते हैं। हमारा भोजन उन्हीं की दया से चलता है, हमारा जीवन उन्हीं की दया से टिका है।

प्राणि-जगत् के विकास का जैसा सिलसिला है, वैसा ही सिल-

सिला उद्भिद-जगत् का भी है। जीव जैसे पहले एक सेल वाले से अनेक सेल वाले, सहज से जटिल, अंगहीन से बहुत अंग वाले बनते रहे, वैसे ही पौधे भी। सबसे शुरू में जो



धरती पर जितनी भी तरह के पेड़-पौधे हैं, उन सबको मोटे रूप में इन्हीं सात भागों में बाँटा जा सकता है।

उद्भिद पैदा हुआ, वह एक सेल का था। उसके बाद आए छतरीनुमा पौधे—न जड़, न धड़, न पत्ते। मगर कई बार इनकी बनावट बहुत टेढ़ी होती थी। सिवार भी उन्हीं से मिलते-जुलते थे। असल में ऐसे पेड़-पौधों में खासियत थी एक सेल की। धीरे-धीरे सेल की तादाद बढ़ती गई और बहुत सेल

वाले पेड़-पौधे दिखाई देने लगे। उसके बाद के भी एक युग में जो पेड़-पौधे आए, जड़ उनके भी नहीं थी। मिट्टी के ऊपर दो-चार पत्तों से हरियाली लुटा देना भर उनका काम रहा। और उसके बाद जो आए, उनमें जड़, धड़, पत्ते सभी थे। नहीं थे केवल बीज। बीज के बदले उनमें पराग था। उसके बाद बीज वाले पेड़-पौधे आए। बीज वाले पेड़-पौधों में दो जातियाँ हुईं—एक के बीज ढके हुए होते, दूसरे के खुले। ढके बीज वालों के भी दो किस्म थे—एक के बीज में दो दल होते जैसे कोंहड़े के बीज और दूसरे का बीज समूचा होता, जैसा कि मकई का बीज।

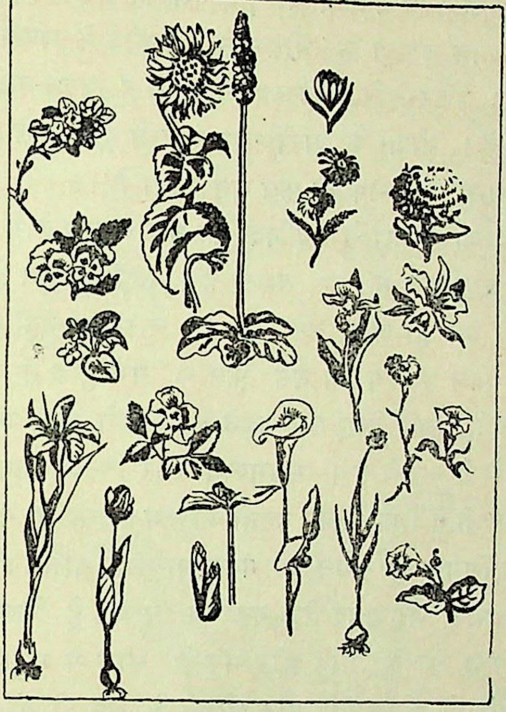
सबसे ज़्यादा तरक्की लिये जो उद्भिद आए, उनकी देह के चार प्रधान अंग हैं। पहला उसका धड़। धड़ ही पेड़ की मूल बनावट है। यह काठ का होता है; काठ का मतलब है पतला, लम्बा, कड़े सेलों का समूह।

दूसरा अंग है पत्ता। पत्ते सूरज की रोशनी पकड़ने की कल हैं। उनकी बनावट कुछ ऐसी है और कुछ ऐसे कायदे से वे शाखों में लगे होते हैं कि हर पत्ते को रोशनी मिलती ही है।

अंगों में से तीसरा है जड़। यह पेड़ के पूरे ढाँचे को मजबूती से मिट्टी में गाड़े रहता है। इसका दूसरा काम है नीचे से पानी और दूसरी तरह की पानी मिली धातुओं को ऊपर पहुँचाना।

फूल और फल हैं चौथे अंग।

पेड़ों का वंश बचाने वाले हैं फूल। उनकी जो लम्बी पतली टहनी होती है, जिसे गर्भ-केशर कहते हैं। उस पर एक झब्बा-



सा होता है। वह भीजा-भीजा चिटपिटा-सा होता है। उसके ज़रा नीचे होती है धागे-सी पतली-पतली चीज़, जिसके माथों पर पीली-पीली नन्ही पगड़ी जैसी बुकनी है। यह है पराग। और डण्ठल के नीचे कमण्डल-सी जो चीज़ है, वही फूलों का गर्भ-कोष कहलाता है। उसी में फूल के अण्डे होते हैं।

अब चाहे हवा के लाये हो, चाहे मधुमक्खी या तितलियों के पखनों और पैरों से ही हो, फूलों के पराग गर्भ-कोष के मुँह पर आकर उस चिटपिटी चीज़ में चिपक जाते हैं। बाद में एक-

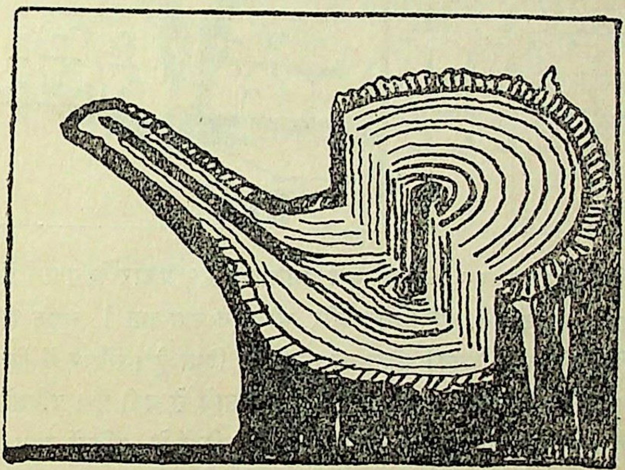
एक पराग के कण बढ़कर फूले हुए नल की शक्ल में आ जाते हैं। वही नल डण्ठल के भीतर से गर्भ-कोष के अण्डों से जा मिलते हैं। फिर सारे अण्डे बदलने लगते हैं; बढ़ते-बढ़ते बीज बन जाते हैं। बीजों के चारों ओर बाद में गूदे जमते हैं और सारा-का-सारा गर्भकोष ही फल बन जाता है।

इस प्रकार फूलों से उद्‌भिदों का वंश चलता है।

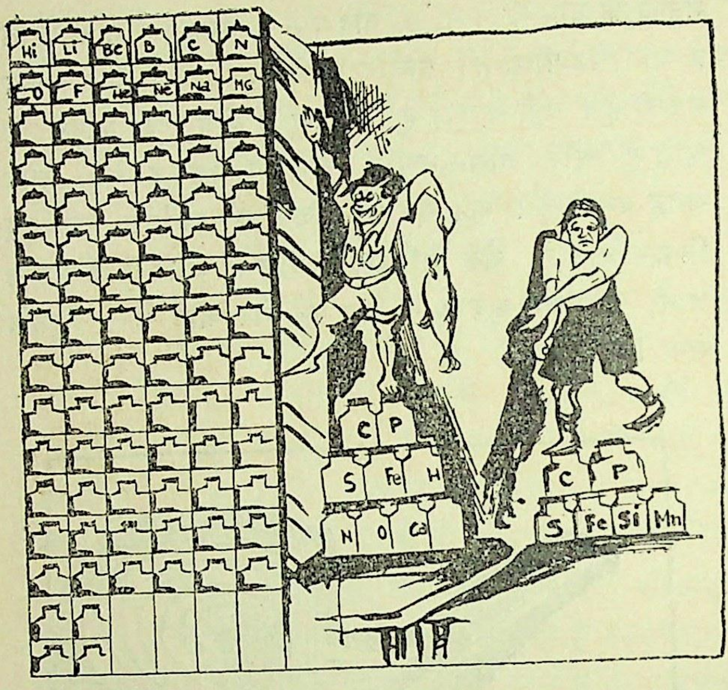
एक बात मन में आ सकती है। उद्‌भिद होते हैं जड़; जड़, यानी एक ही जगह बने रहते हैं, चल-फिर नहीं सकते। फिर इस फूल का पराग उस फूल के गर्भ-मुण्ड में कैसे जा पहुँचता है? इसके लिए उसे उड़ने-चलने वाले दूसरे जीवों की सहायता लेनी पड़ती है। मधुमक्खी और तितली उनका वह काम कर देती हैं। फूलों की इतनी जो चमक-दमक है, पंखड़ियों का इतना सिंगार और मन को मतवाला करने वाली जो महक है, इतना मीठा जो शहद है, वह सब आखिर है किसलिए? यह सब कुछ रंग के मोह और मधु के लोभ से मधुमक्खियों और तितलियों को अपनी ओर खींचने के लिए ही तो है।

यह हो गई बीज की जन्म-कहानी। एक-एक बीज एक-एक सोया हुआ पेड़ है। फलों के केंचुल से निकलकर रस-सनी मिट्टी की गोद पाते ही उसकी नींद खुल जाती है। ऊँचे दरजे के और-और प्राणी तो अपने बच्चों को नेह-जतन से पाल-पोसकर बड़ा करते हैं; पेड़-पौधों से वैसा नहीं बनता। कहीं ऐसा हो कि एक पेड़ से जितने बीज होते हैं, सब अगर उसी पेड़ के नीचे जमा हो जायँ और मिट्टी की शरण लेकर बढ़ने लगें तो क्या नतीजा होगा? आपस की ठेला-ठेली से ही सब मर जायँगे।

मनुष्य के बाल-बच्चे माँ की गोद-पीठ से लगकर होश सँभालते हैं और पेड़-पौधों की सन्तान माँ से दूर हटकर ही फल-फूल सकती है। यही कारण है कि साखू के बीज हवा से दूर उड़ जाते हैं और कास-सेमल के बीज भी उड़कर कहीं और जगह बनाते हैं। कुछ ऐसे भी बीज हैं जो पानी से तैरते हुए निकल जाते हैं, जैसे नारियल के बीज। पानी से वे सड़ न जायँ, इसीलिए कुदरत ने उन पर मोटे और हल्के छिलके लगा दिए हैं।



पेड़ का तना काटने से अन्दर ऐसा ही गोल-गोल दाग दिखाई पड़ता है। इन्हीं दागों से पेड़ की उमर जानी जा सकती है। इसका हिसाब बड़ा सरल है। जितने वैसे दाग हों, पेड़ की उम्र उतने ही साल की होगी, क्योंकि उसके धड़ में हर साल वैसा एक दाग पड़ा करता है।



प्रकृति का भंडार-घर। इसमें कुल मिलाकर ९२ प्रकार के पदार्थ हैं—कारबन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और भी जाने क्या-क्या! सहज बनाने के लिए पंडितों ने इनका छोटा-सा नाम रख दिया है। संसार में जितनी भी चीज़ें हैं, सब इन्हीं ९२ तरह के माल-मसाले से बनी हैं। पंडितों की भाषा में ये मूल पदार्थ हैं। बोतलों पर इन चीज़ों के पंडितों द्वारा दिये गए नाम लिखे हैं।

हिसाब से पता चला है, लगभग ५० करोड़ साल पहले इन मूल पदार्थों की मिलावट होते-होते जीवित पदार्थ बना। तभी से संसार में प्राण का इतिहास शुरू हुआ।

प्राणियों की कहानी



अच्छा, कुछ ऐसे जीव-जन्तुओं के नाम गिनाइए, जिनका पहला अक्षर 'क' हो।

कौआ, कोयल, कछुआ, कुत्ता…

और जिनका पहला अक्षर हो 'ब'?

बगुला, बैल, बाघ, बिच्छू, बिल्ली…

इतना तो मामूली तौर से कोई भी टपाटप कह सकता है। अगर यह पूछा जाय कि हिन्दी के हर अक्षर पर जिन-जिन जानवरों का नाम पड़ता हो, सब बताइए, तो हम-आप कितना कह सकेंगे? बहुत हुआ तो सौ नाम, दो सौ नाम! हममें से शायद कोई ऐसे निकल आएँ कि सौ-दो सौ नाम और गिना जायँ। लेकिन सचमुच में जितने जीव-जन्तु दुनिया के परदे पर हैं, ये दो-चार सौ नाम उस हिसाब से कुछ भी नहीं। जो इस विषय के जानकार हैं, कहीं वे गिनाने लगें तो

दाँतों-तले उँगली दबानी पड़े। अब तक मनुष्य जितने जीवों को जान-पहचान सका है, उनकी तादाद आठ लाख है, आठ लाख !

आठ लाख ! आप कहेंगे, बाज आए हम ऐसी जानकारी से। इन आठ-आठ लाख जीवों का नाम सुनने का धीरज लिये कौन बैठे !

ठीक भी है। कोई अगर इतने-इतने जीव-जन्तुओं की जीवन-कहानी न भी सुने-जाने तो निन्दा की बात नहीं है।

निन्दा की बात चाहे न हो, डरने की बात भी नहीं है, क्योंकि सीखना-जानना भी हो तो आठ लाख जीवों की जन्म-कथा अलग-अलग जानने की जरूरत नहीं पड़ती। जो इसी बात की छान-बीन में रात-दिन व्यस्त हैं, उन्होंने इसका एक बहुत ही आसान उपाय ढूँढ़ निकाला है। एक-एक का लेखा न लगाकर एक तरह के अनेक जीवों को एक कोटि में रखकर जानना आसान हो जाता है। मान लीजिए किताबों की एक ढेरी लगी है; उसे कविता, कहानी, गणित, व्याकरण—इस प्रकार विषयवार छाँट लिया जाय तो सहज हो गया। जीव-जगत् के जानकारों ने भी कुछ ऐसा ही तरीका अपनाया है। आठ लाख जीवों को उन्होंने कुछ भागों में बाँटा है और एक तरह के मिलते-जुलते जीवों को एक कोटि में रखा है। इस तरह बाँटकर देखने को श्रेणी-विभाजन कहते हैं। इस उपाय के बाद हर जीव को अलग-अलग जानने की जरूरत ही नहीं रह जाती; सिर्फ बँटे हुए कई भागों को जान लेने से ही सारे जीवों के बारे में जानना हो जाता है।

संसार में जितने भी प्रकार के जीव हैं, पंडितों ने उन्हें दस मोटे भागों में बाँटा है। यह बटवारा शरीर की बनावट और मिलती-जुलती शक्ल-सूरत के हिसाब से किया गया है। जैसे किसी जीव के तो रीढ़ होती है, किसी के नहीं होती। जिनके रीढ़ होती है, ऐसे जीवों को एक कोटि में रखा गया और जिनके रीढ़ नहीं है, उन्हें दूसरी कोटि में। सीपी, घोंघे-जैसे जीवों की अलग कोटि हुई जोकि शरीर में ही अपना घर ढोते हैं। छाती के सहारे रेंगकर चलने वाले साँप, छिपकली आदि की कोटि अलग हुई। ऐसे दस भाग हुए। असल में पंडितों के बटवारे में ऐसी कोटियाँ हैं तो कुल चौदह, पर दस से ही मोटी जानकारी मज़े में हो सकती है।

तो पहली कोटि की बात ली जाय।

पहली कोटि के जीव हैं प्रोटोज़ोआ। एक सेल वाले जीवों की चर्चा हो चुकी है। उसी एक सेल से जीवन की ज़रूरतों के सारे काम वे कर लेते हैं—खाना, खाने को हजम करना, साँस लेना और छोड़ना, वंश बढ़ाना, सब। इस तरह के सबसे निचले दरजे के जो जीव हैं, उनको नाम दिया गया है प्रोटोज़ोआ। ये बहुत तरह के होते हैं। हम जिस अमीबा से पहले परिचित हो चुके हैं, वह एक प्रोटोज़ोआ है। एक खास बात जान लेने की यह है कि प्रोटोज़ोआ में सभी जीव एक सेल वाले नहीं होते, कई सेल वाले भी हैं। इतना ज़रूर है कि उनके उन सभी सेलों में गहरा लगाव नहीं होता—अलग-अलग, एक दूसरे

से बिखरे-बिखरे।

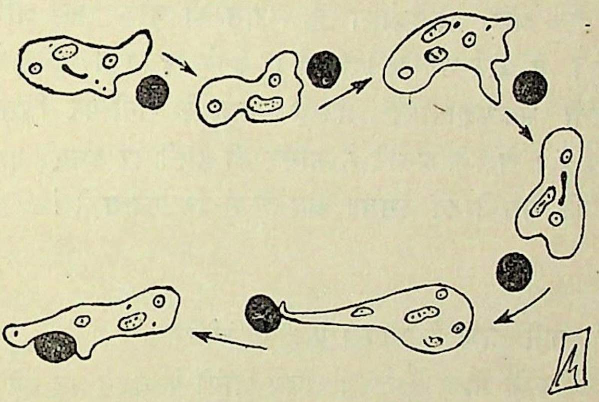
ये प्रोटोज़ोग्रा बड़े नन्हे होते हैं—इतने नन्हे कि अणुदर्शक यन्त्र (माइक्रोस्कोप) के बिना उन्हें देख सकना सम्भव नहीं।

अगर प्रोटोज़ोग्रा को देखना हो, तो सिवार-भरे तालाब का एक लोटा पानी कोई ले आए। उस पानी को दो-तीन अलग बोतलों में भरकर छोड़ दिया जाय। दस बारह दिन बीत जाने पर उस पानी का एक कतरा काँच पर रगड़कर अणु-दर्शक यन्त्र से देखें। बड़े ही अजीबोगरीब शक्ल के जीव दिखाई पड़ेंगे। तालाब के पानी को कई दिन तक बोतल में महज़ इसलिए छोड़ा गया कि उन कई दिनों में प्रोटोज़ोग्रा ने बेशुमार बच्चे दिये, इतने बच्चे दिये कि उन्हें गिनना मुश्किल है। उस एक कतरे में खचाखच बच्चों की भीड़ काँच पर आ रही। तभी उन्हें देखना सम्भव हो सका। यों था तो वह तालाब के ही पानी में, पर बीच के कई दिनों में उसकी तादाद बेहिसाब बढ़ गई। मगर ये गाय, बकरी की तरह तो बच्चे नहीं जनते। एक सेल से दो, दो से चार और इस तरह दुगने होते चले जाते हैं।

तालाब के पानी से जो प्रोटोज़ोग्रा लाये गए, उनमें ज़्यादातर अमीबा ही थे। प्रोटोजोग्रा जीवों की कोटि का नाम हुआ, और अमीबा हुआ उसका जाति नाम। जैसे 'भुवनमोहन साधु' में साधु उपाधि है। भुवनमोहन के सिवाय भी साधु होते हैं। इसी तरह अमीबा के सिवाय भी प्रोटोज़ोग्रा हैं।

प्रोटोज़ोग्रा का खाने का ढंग बड़ा अजीब है। अगले पृष्ठ की तस्वीर में दिखाई पड़ रहा है कि एक प्रोटोज़ोग्रा के शरीर

से कई हिस्से उभरकर बाहर आ रहे हैं। ये हिस्से उसके नकली पाँव हैं। नकली कहने का कारण है, उसके शरीर में पाँव नाम का कोई अङ्ग सचमुच में होता नहीं है। शरीर का कोई भी हिस्सा उभरकर उसका पाँव बन जाता है। ज्योंही खाने की कोई चीज़ सामने आती है, वह अपनी छाती को ठेलकर उधर बढ़ा देता है। छाती का बढ़ाना क्या हुआ, साथ-ही-साथ उसका सारा शरीर ही उस ओर को बढ़ जाता है। जब खाने



प्रोटोज़ोआ शिकार कर रहा है।

की उस चीज़ से वह जा सटता है, तो चट उसे निगल जाता है। हम लोगों की तरह मुँह तो उसके होता नहीं। लिहाज़ा खाना निगलने में उसे सारे शरीर की ताकत लगा देनी पड़ती है, सारे बदन से खाने को जकड़ना पड़ता है।

लगे हाथ एक और किस्म के प्रोटोज़ोआ की सिफ़्त कह दें। काले और सफेद जामुन तो होते हैं, लाल जामुन देखना हो, तो पहाड़ की ओर चलिए। बर्फ से पहाड़ एड़ी से चोटी तक

ढक गया है। अचानक एक जगह थोड़ा हिस्सा गाढ़ा लाल दिखाई पड़ता है, मानो लहू से पट गया हो। मगर यहाँ लहू कहाँ, यह करतूत लाल प्रोटोज़ोआ की है, जिसे ब्लडबर्ड कहते हैं। उस जगह लाखों-लाख की तादाद में वे भीड़ लगाए बैठे हैं। उनके रंग से बर्फ भी लाल हो गई है। ये प्रोटोज़ोआ अमीबा के समान अलग-अलग बिखरे नहीं रहते, मगर साथ रहते हुए भी इनका आपसी लगाव कुछ गाढ़ा नहीं, दूर-दूर का है।

एक और प्रोटोज़ोआ हैं, 'रात की जोत' कह लीजिए इन्हें। ये और भी मजेदार हैं। इनके बदन में जुगनू जैसी रोशनी भुकभुकाती है और ये समुद्र के पानी पर छितराए रहते हैं। रात के अन्धेरे में सागर की छाती पर इनकी नारंगी रंग की रोशनी का जमघट क्या ही सुन्दर फबता है!

अब दूसरी कोटि के जीव। ये हैं पोरिफेरा।

पोर के माने हैं गढ़ा। जिन जीवों के बदन पर गढ़े होते हैं वे पोरिफेरा कहाते हैं। अनुमान कीजिए ऐसा कोई गढ़ों वाला जीव!

स्पंज!

यह स्पंज भी कोई ज़िन्दा जीव होता है क्या?

ज़िन्दा जीव ज़रूर होता है। जिन स्पंजों को हम तरह-तरह से काम में लाते हैं, उनमें बेशक प्राण नहीं होते। वह उसका मानो कंकाल हैं। कभी उनमें और भी कोई-कोई चीज़ रही थी और वह ज़िन्दा थी। जब वह ज़िन्दा थी तो उसका

रंग था हरा ।

उनके शरीर में सेल एक से ज़्यादा होते हैं, पर सारे सेल खूब घुले-मिले होते हैं, ऐसी बात नहीं है । हाँ, उनमें ग्रापसी मेल-जोल कुछ होता है, एक सहज लगाव होता है, उन भीड़ लगाने वाले प्रोटोज़ोग्रा-जैसा बिखरा-बिखरा-सा सम्बन्ध नहीं होता ।

तीसरी कोटि में ग्राते हैं सिलेनटराज ।

नाम ज़रा ऊबड़-खाबड़-सा ज़रूर है, पर मतलब सीधा-सादा-सा है—सूजा हुग्रा पेट । इन सूजे पेट वालों का शरीर दो सेलों के परदे का होता है । इन तक ग्राते-ग्राते सेलों की बनावट कुछ उलझी-सी हो गई है । ये सेल ग्रपनी जमात बनाना जान गए हैं ग्रौर एक-एक जमात ग्रलग-ग्रलग काम हाथ में लेना सीख गई है ।

समुद्र के किनारे जेली मछलियाँ रहती हैं । मुलायम पुल-पुला शरीर ! ये भी सूजे पेट वालों की कोटि में ग्राती हैं ।

प्रशान्त महासागर में मूँगों के टापू की चर्चा हुग्रा करती है । मूँगे सूजे पेट वाले कीड़े होते हैं, उन्हीं के कंकालों से मूँगों का टापू बनता है ।

ग्रब ग्राई चौथी कोटि । इसमें हैं एकाइनोडार्म ।

यह भी ग्रजीब टेढ़ा-मेढ़ा-सा नाम है । जी में ग्राता है, इसका नाम चक्री रखा जाय । देखने में इसका शरीर चक्के जैसा होता है, कुछ-कुछ तारों जैसा भी । शरीर का जो ग्रसली ग्रङ्ग बीच में रहता है, वह गोल होता है । ठीक उसी के पास से कुछ लम्बी-लम्बी चीज़ें निकली हैं, जैसी कि साइकिलों के

पहियों की सींकें होती हैं। तारा नाम की मछलियाँ इसी जाति की होती हैं।

ये भी अनेक सेल वाले जीव हैं। धीरे-धीरे इनके शरीर में पेशी, स्नायु, जिगर, पेट, यह सब भी आ गया है।

तारा मछलियाँ एक प्रकार के सीपों को खाया करती हैं। आकार में सीप उनसे कहीं बड़े होते हैं, फिर भी ये उनको खाती हैं। कैसे, ज़रा सुनिए।

सीप के समीप आते ही ये अपने हाथों से उसे दबोच धरती हैं; सीप के दोनों तहों के जोड़ में से अपना पाँव अन्दर घुसेड़कर लगातार खींचने लगती हैं। सीप में उनसे ज़्यादा क़ूवत होती है; फिर उसका ढकना भी बड़ा मज़बूत होता है। सो कुछ देर तक तो उसका कुछ बिगड़ता ही नहीं; वह अपने बदन को ताने रहता है। बीस-एक मिनट तो इसी तरह बीत जाते हैं। इतनी देर तक लगातार बदन को ताने रहने से सीप थककर ढीला पड़ जाता है, उसके ढकने खुल जाते हैं, उसके फाँकों में से मुलायम शरीर बाहर निकल आता है। निकल चाहे आए, पर तब भी तारा मछली को इतनी जुर्रत नहीं होती कि उसे निगल जाय, क्योंकि सीप उससे बहुत बड़ा होता है। इसके बाद वह एक अजीब काम करती है। मुँह की राह अपनी अन्तड़ियों को निकालकर सीप के नरम शरीर को ढक देती है। फिर धीरे-धीरे उसे निगलती और हजम करती जाती है।

तारा मछली का चलना भी गज़ब का होता है। उसके जो नन्हे-नन्हे हाथ हैं, उनके नीचे कतारबन्दी छोटी-छोटी

नलियाँ हैं। ये नलियाँ रबर की तरह फूल-फूल जाती हैं। नलियों के मुँह बाहर से बन्द होते हैं, अन्दर से खुले। शरीर के भीतर एक थैली होती है, जो हरदम पानी से भरी रहती है। जब चलने का मौका आता है, तो वह थैली के पानी को उन नलियों में डाल देती है। चाप पड़ते ही नलियाँ बड़ी हो जाती हैं और अपने उन्हीं पाँवों से वह पानी काटती हुई आगे बढ़ती रहती है।

इसके बाद आगे की तीन कोटियों में आते हैं कीड़े-मकोड़े। शक्ल-सूरत में ये तीनों अलग होते हैं।

पाँचवीं कोटि में आते हैं फीते जैसे चिपटे कीड़े। ये सब तरह से दूसरों के आसरे रहते हैं; दूसरे प्राणियों के बदन में डेरा डालते हैं, उन्हीं के खाने में हिस्सा बँटाकर खुशी-खुशी रहते हैं और उन्हीं के बदन पर अण्डे देते हैं।

छठी कोटि के कीड़े देखने में गोल-मटोल होते हैं।

सातवीं कोटि के कीड़े होते तो गोल ही हैं, पर वैसे नहीं। अँगूठी जैसी बहुत सी मुड़ी मालाओं के मिलने से जैसे उनका शरीर बना होता है। केंचुए, जोंक आदि इसी कोटि में आते हैं। लेकिन ये केंचुए औरों के आसरे नहीं जीते, बल्कि मनुष्य का बड़ा उपकार करते हैं। हाँ, जोंक परजीवी होती है, मनुष्य का खून चूसती है।

आठवीं कोटि में आते हैं मोलास्क।

रंगों की जगर-मगर में पोरिफेरा एक ही होते हैं। लेकिन अब जिनके बारे में कहने जा रहे हैं, वे भी खूब रंग-बिरंगे होते हैं। उनके दर्शन समुद्र के किनारे ही मिल सकते हैं। हाँ, जब

वे किनारे पर दीखते हैं, तब वे ज़िन्दा नहीं होते, उनका ऊपरी खोल ही पानी में तैरकर किनारे आ जाता है। ये हैं शंख, सीप, कौड़ी। जाने कितने जतन से बटोरकर लोग इन्हें इकट्ठा किया करते हैं।

कुटुम्ब-कबीलों में ये मामूली नहीं हैं—कोई अस्सी हज़ार नाते-गोते हैं इनके। ज़्यादातर उनका वास पानी में ही है—समुद्र में या झील-तालाब में।

कई लोग सोचते हैं, इन खोलों से ये घर का काम लेते हैं; हम लोग जैसे मेहनत-मज़दूरी करके थके-माँदे शाम को अपने घर आते हैं, शायद वैसे ही ये भी बाहर की खाक छानकर फिर अपने इन घरों में घुस पड़ते हैं।

मगर बात ऐसी नहीं है। ये खोल उनसे अलग नहीं होते, जुड़े होते हैं। तमाम जिन्दगी ये उसी में सटे रहते हैं। सिर्फ चलते वक्त इन खोलों से अपने पैर और सिर को बाहर निकाल लेते हैं।

आरथ्रोपॉड्स हैं नवीं कोटि में।

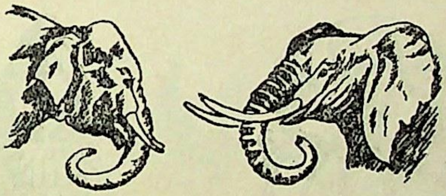
आरथ्रो के अर्थ हैं जोड़ा, और पॉड के अर्थ हैं पैर। ऐसे फतिंगे, जिनके पैर जुड़े होते हैं, इस कोटि में आते हैं।

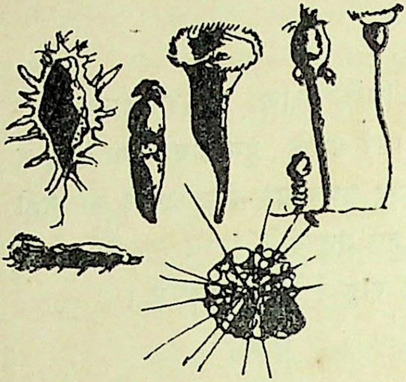
इन्हें हम सब खूब जानते-चीन्हते हैं। चींटी, बरं, तेलचिट्टा, फतिंगा, तितली। कोई देखने में खूबसूरत, कोई बदसूरत; किसी का बदन सख्त तो किसी का कोमल; कोई काट खाता है तो कोई सुई चुभाता है; कोई उड़ता है तो कोई चलता है। कोई रात को उड़ता है तो कोई दिन को।

इस जानने का आखिर अन्त कहाँ है, मंजिल और कितनी

दूर है ?

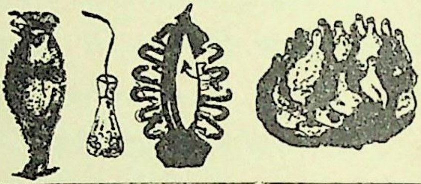
प्रोटोज़ोआ, पोरिफेरा, सिलेनटराज, एकाइनोडार्म, कीड़े-मकोड़े, मोलास्कों की हद पार करके हम अब एक छोर के पास आ पहुँचे हैं। किन्तु यह सफर दस-बीस बरसों का नहीं है। इस रास्ते से गुज़रते हुए मनुष्य के राज तक पहुँचने में कोई पचास करोड़ साल की राह तै करनी पड़ी है।

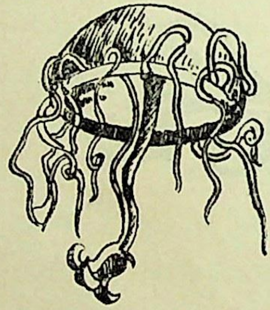


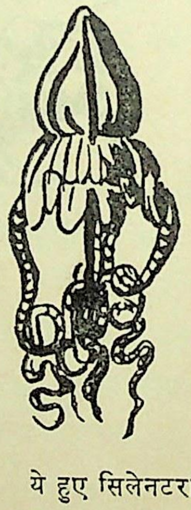


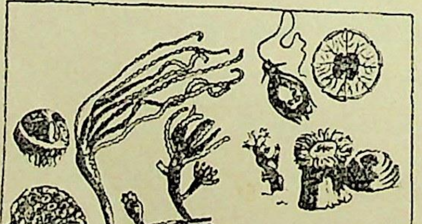
ये अजीबोगरीब शक्ल वाले सब क्या हैं ? ये हैं प्रोटोज़ोआ ।

और ये ? ये हैं पोरिफेरा ।

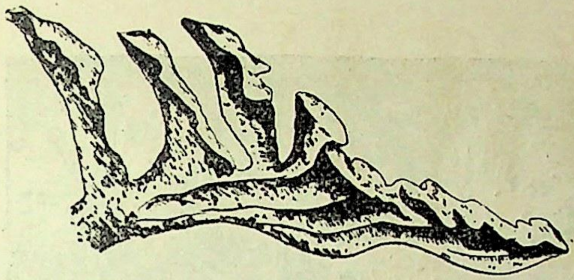




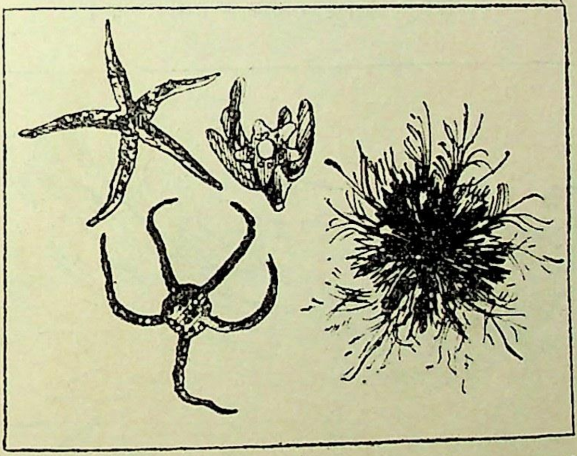




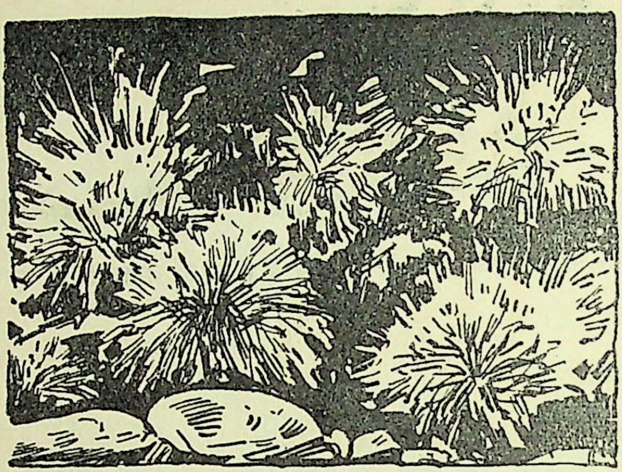
ये हुए सिलेनटराज



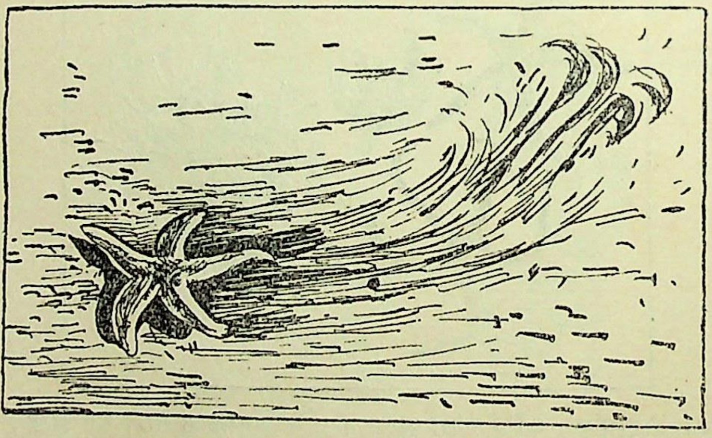
ये भी सिलेनटराज कोटि के ही जीव हैं। इनका जाना-चीन्हा नाम मूंगा है।



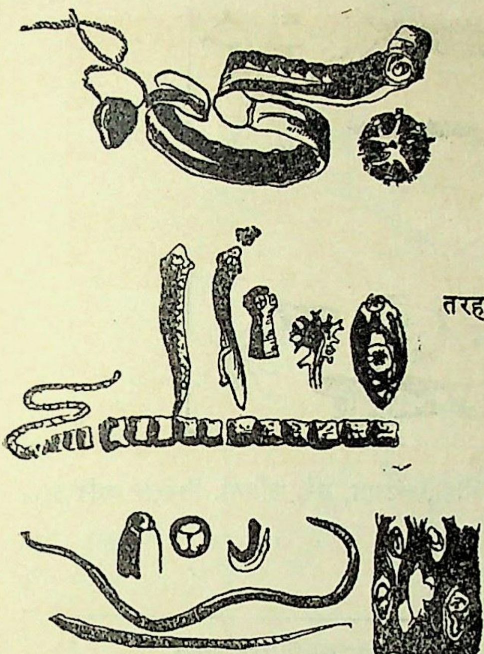
एकाइनोडार्मस : काँटों वाला शरीर। इनके जमघट में तारा मछली को ढूँढ़ निकालिए। पास के उस अजीबोगरीब जन्तु का नाम जानते हैं ? वह है सी-अार्चिन।



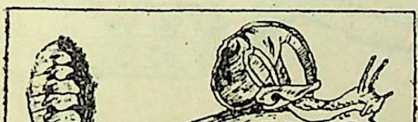
सी-अर्चिन : शैतान के लकड़दादा। नहाने को समुद्र में उतरिए तो बदन से, पैरों से, उलझकर नाक में दम कर दें।



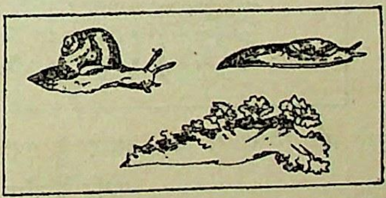
तारा मछली। इनकी चाल ही बता रही है कि यह ऐसा-वैसा जीव नहीं है।



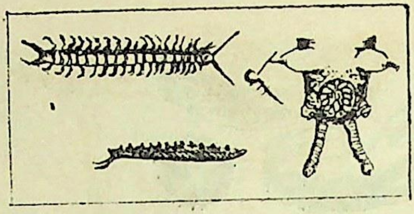
तरह-तरह के कीड़े—चिपटे,
गोल, अँगूठी जैसे ।

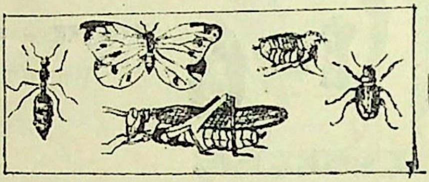


मोलास्क—यानी
मुलायम बदन ।

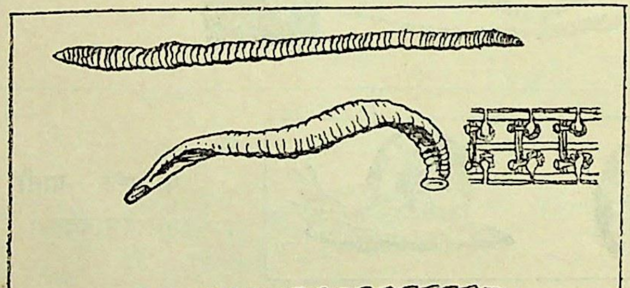


घोंघा, सीप, कौड़ी ।

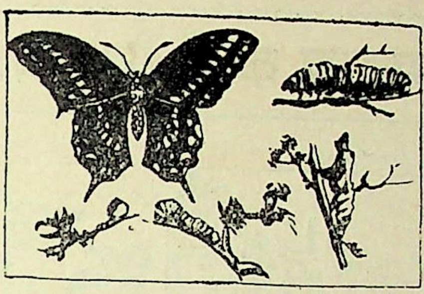


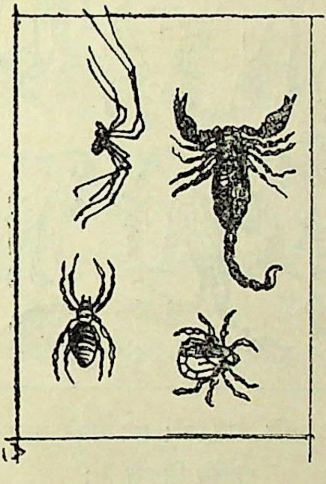


छः टाँगों वाले जीव—चींटी, खटमल, बर्र, फतिंगा, तितली आदि।



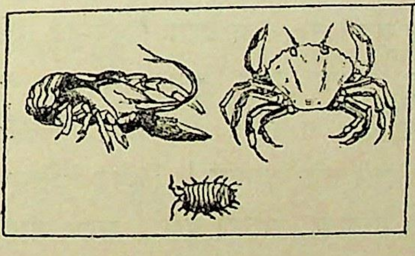
इनके पाँव तो छः से कहीं ज़्यादा हैं, पर हैं ये सभी जोड़ा-पाँव वाली कोटि के जीव।



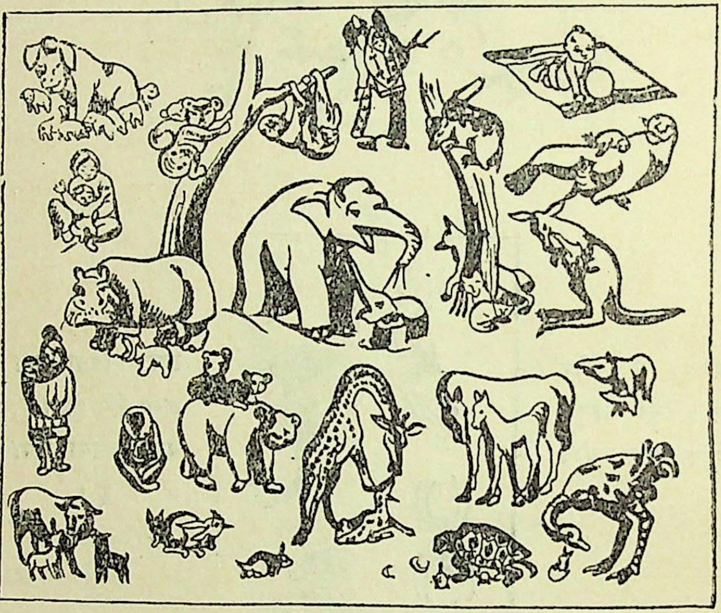


बीच में और नीचे : कुछ जोड़ा-पाँव वाले जीव

ऊपर : तितली का जन्म कैसे होता है, यह दिखाया गया है।



मनुष्य कहाँ से आया



ये हैं दूध पिलाने वाले जानवर। सब अपने बाल-बच्चों के साथ टहलने निकले हैं।

हमारी यात्रा पचास करोड़ साल पहले की धरती से शुरू हुई; और चलते हुए हमने क्या-क्या देखा ? दूर-दूर तक फैला हुआ सूनापन; धू-धू करता हुआ सपाट मैदान; न आदमी न आदमजाद; न पंछी, न पशु ! पेड़-पौधों की कौन कहे, हरी घास की एक पत्ती तक नदारद ! जिधर देखिए पहाड़ और पहाड़। सूरज निकला, सवेरा हुआ, मगर जीवन की कोई

हलचल नहीं। सूरज डूबा, रात आई, मगर ऐसी पलकें ही नहीं जो थकावट और नींद से भरी झुक जायँ। कहीं प्राण नहीं, सब प्राणहीन ! यह हाल था ज़मीन का !

लेकिन पानी में ? पानी में लहराते जीवन के हलकोरों की कमी नहीं। तरह-तरह के पौधे, रंग-बिरंगी मछलियाँ, कैसे-कैसे नन्हे-नन्हे जीव !

इन असंख्य जलचरों में यह एक है एकाइनोडार्म। अजीब चाल ! उस समय तक जलचरों में यही सबसे ज़्यादा विकसित हो सके थे।

उद्भिद अचल होते हैं, प्राणी चलते-फिरते हैं। न चलें-फिरें तो जिएँ कैसे ? खाना तो खुद मुँह में नहीं आ सकता। लिहाज़ा चलना ज़रूरी ही है। ज़रूरी ही चाहे हो, पर सभी प्राणी क्या एक-सा चल सकते हैं ? कोई धीरे ही चल सकते हैं, कोई तेज़ चल लेते हैं। जो तेज़ चल लेते हैं उनके बड़े मज़े हैं। वे खाने की चीज़ पर नज़र पड़ते ही झपट सकते हैं और किसी दूसरे के उस पर टूटने से पहले लेकर नौ दो ग्यारह हो सकते हैं।

इससे यह मतलब निकला कि जिनके चलने के औज़ार जितने ही मज़बूत हैं, उनके टिके रहने का बल उतना ही ज़्यादा है। कोई दौड़ सकता है, उसके लिए इतना ही काफ़ी नहीं है। कहाँ, किधर को दौड़े, यह समझने की अक्ल भी तो होनी चाहिए। यह हुई सूझ-बूझ की बात। सूझ-बूझ का वास्ता है दिमाग से।

जिसके चलने की तेज़ी और दिमाग दोनों हों, जीत उसी

की होगी।

निचली पीढ़ी के जल-जन्तुओं में दिमाग की कमी थी।

एक बार ट्राइलोबाइट नाम के एक जन्तु ने पानी में बड़े सितम ढाने शुरू किये। उसके बदन में ताकत खूब थी; जिसे पाता, उसीको दबोच लेता। बेचारे बिना दिमाग वाले सीधे जन्तुओं का वंश मिटने को हो गया।

मगर एक तरह के ऐसे जीव मिले, जिन पर ट्राइलोबाइट की ताकत का सिक्का नहीं जम सका। जब वह तूफान-सा उस पर टूटता, यह दाँव से बगल हो जाता। उसके दिमाग था और दिमाग होने से सूझ भी थी।

दिमाग होने के नाते ही शायद पंडितों ने उसका एक भारी-भरकम-सा नाम रख दिया—आस्ट्रोकोडार्म। जहाँ तक खयाल है, दिमाग वाले पहले जीव यही हैं—जलजन्तु।

पंडितों का कहना है, अपने बेटों से हारने में शरम नहीं। और अखीर में ये हज़रत आस्ट्रोकोडार्म भी हार बैठे—ठीक अपने बेटे से या नहीं, नहीं कहा जा सकता, पर अपने वंश के ही एक जीव से। खानदान के उस जीव का नाम है, मछली।

मछली

आखिर मछलियों की जीत हुई कैसे? ऐसे कि उनके दिमाग था, पानी काटकर तेज़ी से चलने के लिए दो पखने भी थे और शरीर के दोनों छोर नुकीले-से थे।

इन सबके अलावा भी मछलियों में एक चीज़ थी—गरदन से पूँछ तक पीठ पर हड्डी की एक छड़-सी। यह छड़ रीढ़

है—मेरुदण्ड।

इस तरह मछलियों की पैदाइश से प्राणि-जगत् में जीवों के दो वर्ग हो गए—एक वह जिसके रीढ़ है और दूसरे वह जिसके रीढ़ नहीं।

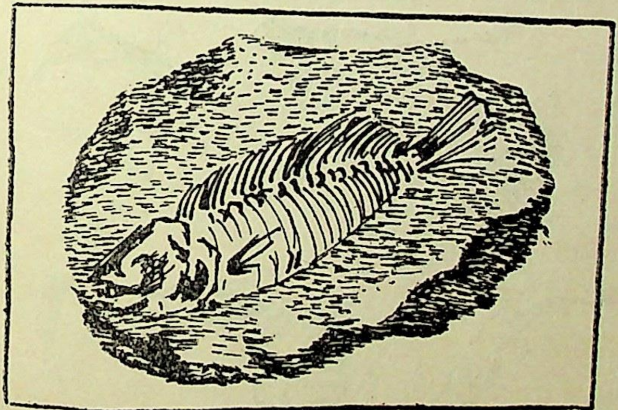
संसार में रीढ़ वाले जितने भी जीव हैं, उनमें तीन बातों में समानता पाई जाती है—

१. चलने के दो जोड़े औज़ार। मछली के दो जोड़े डैने होते हैं; चिड़ियों के दो पंख और दो पैर; अन्य पशुओं के दो जोड़े पैर ही होते हैं, और मनुष्यों में ये दो पैर, दो हाथ के रूप में हैं।

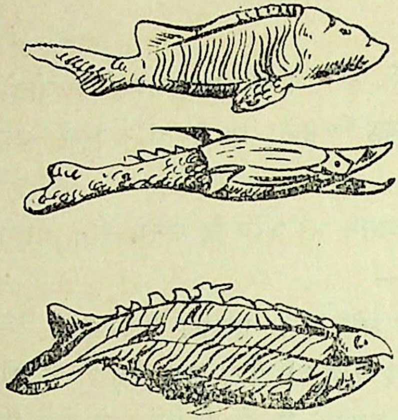
२. खोपड़ी के अन्दर दिमाग; और

३. पीठ के ऊपर लम्बी रीढ़।

मछली जलचर है।



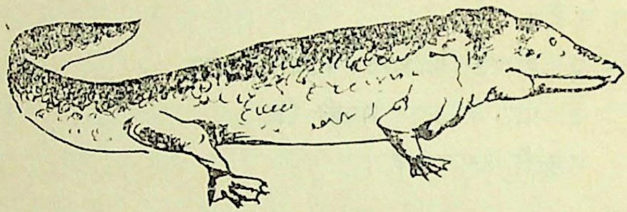
आदिम मछली का फॉसिल।

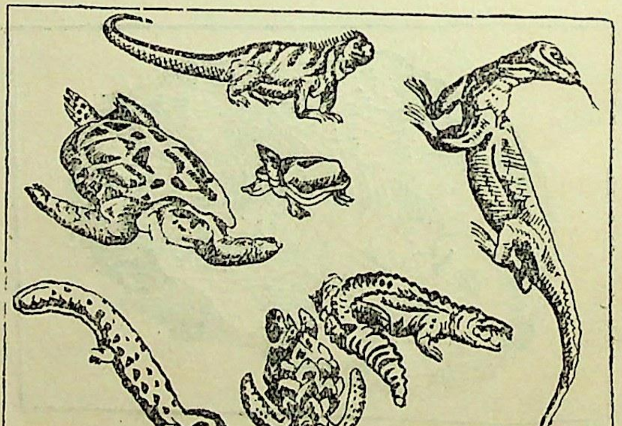


ये तीन हैं आस्ट्रोकोडार्म। ये मनुष्य के बड़े ही पुराने पुरखे हैं। यों कहिए तो ये आदिकाल की मछलियाँ हैं।

चौथी शक्ल एक उभचर की है; उभचर, यानी पानी-ज़मीन दोनों में रह सकने वाला।

सबसे नीचे की तस्वीर में आज के कई छिपकली जाति के जीव दिखाये गए हैं।





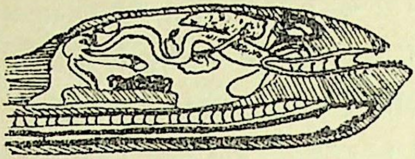
बातों-बातों में कहा जाता है, 'जब तक साँस तब तक आस।' पानी से निकालने पर मछली साँस के लिए तड़पने लगती है। आखिर क्यों ? धरती की हवा में भी तो ऑक्सीजन रहता है। रहने से क्या हुआ ? मछलियों का शरीर कुछ इस तरह का बना है कि वे पानी में से ही ऑक्सीजन खींच सकती हैं। जो जीव धरती पर ऑक्सीजन खींच सकते हैं, उनके फेफड़ा होता है। मछली पानी में साँस लेती है, गलफड़े से।

लेकिन हम गलत कह गए। नाम लेने को फेफड़ा मछलियों के भी होता है।

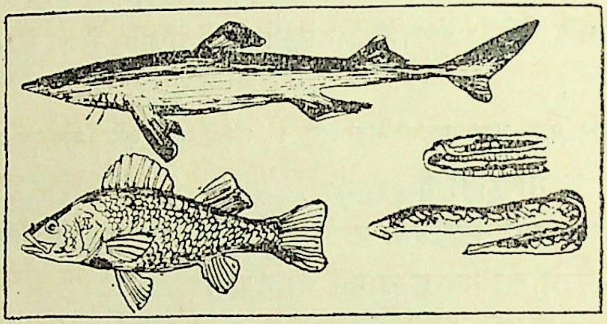
एक बार मछलियों पर बड़ी भारी मुसीबत आ पड़ी। जीने-मरने का सवाल सामने आ गया।

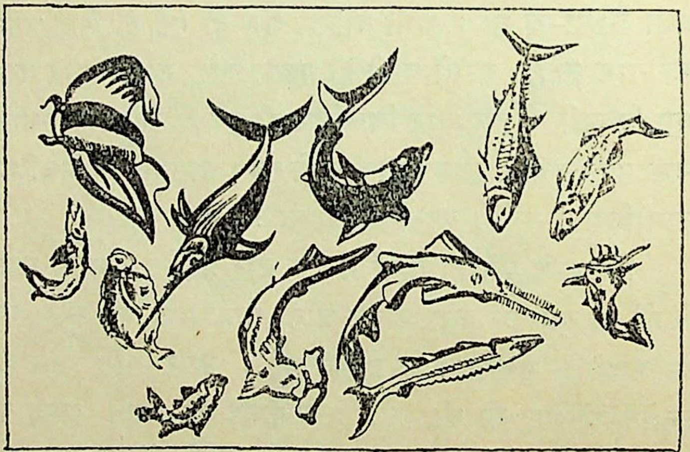
पुरानी जो धरती थी, उस पर धूप-पानी का सिलसिला बड़ा बेढंगा-सा था। कभी बारिश शुरू हो गई तो फिर थमने का नाम नहीं; बरसों पानी ही पड़ता चला गया। और कहीं धूप निकली तो लगातार चिलचिलाती धूप ही रही। नदी-नाले सूख गए, ज़मीन फटकर चौचीर हो गई। आसमान में मेघों का नामोनिशान नहीं। बरसों यही हाल !

विपदा के ऐसे ही दिनों में एक बार प्रकृति ने मानो मछलियों को बुलाकर कहा, अगर जीना चाहती हो, तो सूखे पर आ जाओ। मछलियाँ ऊपर आ गईं। ऊपर साँस लेने की उन्होंने कोशिश जो की, सो उनके फेफड़े बन गए। आज तो पृथ्वी पर पानी की कमी रही नहीं। मछलियों को भी अब फेफड़े की दरकार नहीं रह गई। लेकिन एक बार वह बन जो



मछली का गलफड़ा





तरह-तरह की मछलियाँ। रीढ़ सबसे पहले इन्हीं के शरीर में आई।

गया था, इसलिए अब भी उनके शरीर में रह गया है।

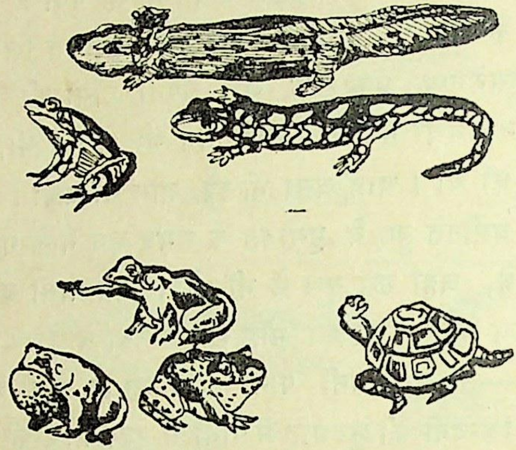
सूखे के दिनों में मछलियाँ फेफड़े की बदौलत ज़िन्दा रह सकीं। दूसरे एक प्रकार के जीव अपनी टाँगों की दया से अपना जीवन बचा सके। उनकी टाँगें भी अजीब थीं, चाल भी गज़ब की थी। चाहे जैसा भी हो, जान तो बची। अपनी वही टाँगें घसीटते हुए वे मुसीबत के समय उन नाले-गढ़ों तक जा पहुँचे थे, जहाँ उस सूखे में भी थोड़ा-बहुत पानी बच रहा था। लेकिन इनसे पानी का मोह छोड़ते नहीं बना। ये जीव उभचर हैं—उभचर, यानी पानी और ज़मीन दोनों के रहने वाले। ये ज़िन्दगी की शुरुआत में पानी में रहते हैं, बाकी ज़मीन पर। मेढ़क को ही लीजिए। इसके बच्चे पानी में किलबिलाते रहते हैं। जब उनकी दुम जाती रहती है, तो मेढ़क होकर वे ज़मीन पर आ जाते हैं। फिर भी उनका पानी से पिंड नहीं छूटता। अण्डे देने के लिए फिर पानी में उतरना ही पड़ता है।

छिपकली जाति के जीव

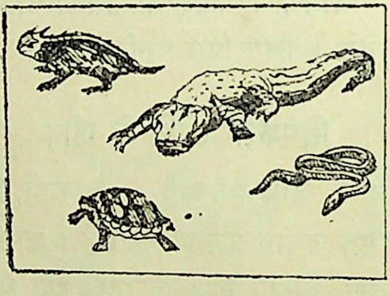
छिपकली जाति के जीव अनेक हैं—छिपकली, गिरगिट, साँप, मगर। ये लगभग ज़मीन पर ही रहते हैं। धरती पर हज़ारों-हज़ार साल तक इनका राज चलता रहा था। इसके भी कारण हैं।

एक तो मछली-मेढ़क जैसे अण्डा देने वाले जीव होने के बावजूद ये ज़मीन पर ही अण्डे दे सकते थे। इनके अण्डों पर मजबूत परदा पड़े रहने से उनके बच जाने की उम्मीद भी थी।

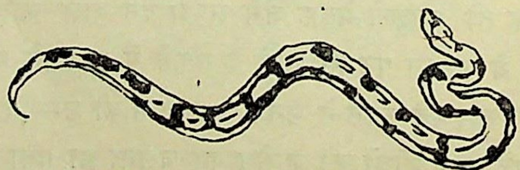
दूसरे, इन जीवों को ज़मीन पर चलना आ गया। चलना

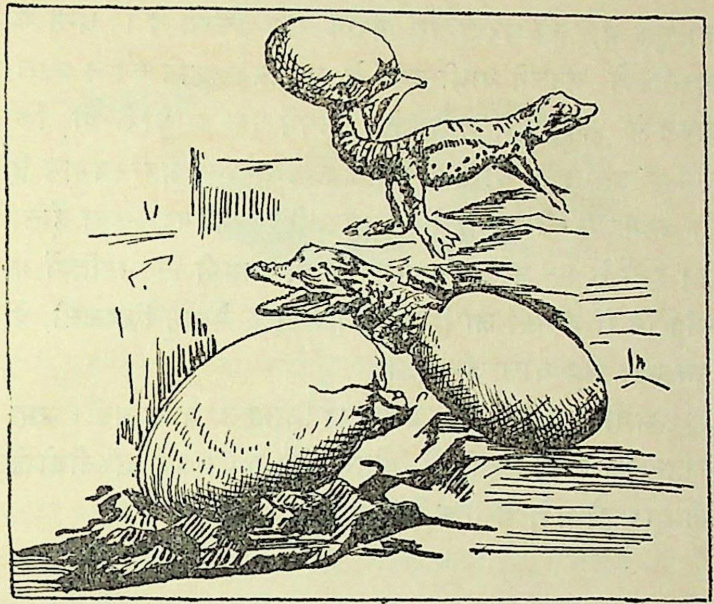


ज़मीन और पानी दोनों में रह सकने वाले उभचर ।



छिपकली जाति के जीव ।





श्रण्डे में से मगर का बच्चा बाहर निकल रहा है। ये आज के छिपकली जातीय जीव हैं।

आया कुछ मेढ़कों जैसा लँगड़ाते हुए नहीं, ज़मीन पर शरीर का पूरा भार डालकर।

पाँवों का फ़र्क़ बढ़ते-बढ़ते इनमें फिर बहुत भेद हो गए। कुछ छिपकली जाति के जीवों की टाँगें बढ़ती चली गईं, और कुछ टाँगें गायब हो जाने से साँप बन गए। उन्हीं में से कुछ के पाँव पखने हो गए और वे पानी में तैरने लगे। कुछ उन्हीं पंखों से आकाश में उड़ने लग गए। लेकिन उड़ने वाले छिपकली जाति के जीव ही पंछियों के पुरखे नहीं हैं।

इसी जाति के खानदान में हज़ारों साल पहले डाइनोसोर

हो चुके थे, जो धरती पर बेरोक राज करते थे। अन्त में धरती की बदलने वाली दशा के मुताबिक अपने को न बदल सकने के कारण वे जाते रहे। उनमें एक कमज़ोरी थी कि उनका लहू ठण्डा था। शरीर के ठण्डे लहू का यह स्वभाव है कि आबहवा की गरमी के अनुसार ही वह भी गरम-ठंडा होता है। इसी से यह बात भी समझ में आ जायगी कि सरदियों में साँप बिलों में क्यों जा छिपते हैं। मछली, मेढ़क, छिपकली, ये सब ठण्डे लहू वाले जीव हैं।

अचानक धरती की आबहवा बिलकुल बदल गई। यह कहिए कि सारी धरती ही हिमालय हो गई। तब डाइनोसोरों की हार हो गई; वे टिक नहीं सके।

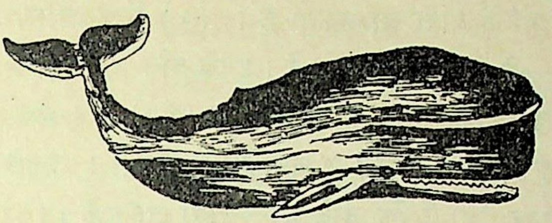
एक हाथी के सामने मक्खी जितनी बड़ी लगती हैं, डाइनोसोर के मुकाबले एक खरगोश उतना बड़ा भी नहीं लगता। मगर इन खरगोशों ने ही धरती की मनमानी चुनौती कबूल की।

खरगोशों की खासियतें गिनाएँ।

एक तो इनका लहू होता है गरम। इसलिए डाइनोसोर के समान सरदियों की इन्हें परवाह नहीं।

दूसरे, इनका बदन घने रोओं से ढका रहता है। ज़रा ज़्यादा सरदी पड़ी नहीं कि रोएँ खड़े हो गए। उन रोओं को छेदकर ठण्डी हवा चमड़े तक नहीं पहुँच पाती।

दूध पिलाने वाले जीव



तीसरे, ये अण्डे नहीं देते। अण्डे देने के झमेले कितने हैं। कभी फूट गए तो कभी कोई दूसरा जीव चट कर गया। बेहिसाब झंझट ! सो ये अण्डे नहीं देते। बच्चे इनके भी अण्डों में से ही निकलते हैं, पर माँ के पेट ही में। वहाँ से कुछ बढ़कर ही बाहर आते हैं। पैदा होने के बाद भी माँ बच्चों की देखभाल करती है, उसी का दूध पीकर बच्चे बढ़ते हैं। मतलब यह है कि खरगोश दूध पिलाने वाले जीव हैं। इस प्रकार दुनिया में उनके टिके रहने की उम्मीद कहीं अधिक है।

उम्मीद क्या, ये आज भी टिके हुए हैं !

दूध पिलाने वाले जन्तु पहले तो ज़मीन पर ही रहते थे। बाद में ज़मीन, पानी, आसमान, सभी जगह फैल गए। चमगादड़ आसमान को उड़ गया, पर सोने के लिए उसे धरती पर ही उतरकर आना पड़ता है। सील पानी में उतर पड़े, पर साँस लेने के लिए उन्हें भी समय-समय पर ज़मीन पर आना पड़ता है। गिलहरी ने पेड़ की डालों पर शरण ली। ये सभी दूध पिलाने वाले जीव हैं।

जो दूध पिलाने वाले जीव ज़मीन पर रहे, वे कई भागों में बँट गए। उनकी बनावट और स्वभाव इतने तरह के होते

हैं कि हद नहीं। दाँतों की बनावट के हिसाब से इन सबको तीन भागों में बाँटा जा सकता है। (१) सिंह, बाघ, कुत्ता, बिल्ली—ये मांस खाने वाले हैं। इनके दाँत इस ढंग के बने हैं कि खींच-तानकर मांस खाया जा सके। (२) गाय, बैल, घोड़ा भेड़, बकरी, आदि माँस न खाने वाले जीव हैं। इनके दाँतों की बनावट ऐसी है कि खाने को चबाया जा सके। (३) चूहा, गिलहरी आदि के दाँत कुतर-कुतरकर खाने लायक बने हैं। इनके सामने के दाँत ज़िन्दगी-भर बढ़ते ही रहते हैं और रात-दिन काम लेने से घिसते भी जाते हैं। अगर कोई गिलहरी पाल ली जाय और उसे पीस-पीसकर चीज़ें खाने को दी जायँ तो अन्त में होगा यह कि वह मुँह ही नहीं खोल सकेगी; फिर खाये बिना मर जायगी।

डारविन की खोज से पता चल चुका है कि किसी भी जाति या दरजे के जीव एकाएक धरती पर नहीं आ धमके; अपने पहले के जीवों से उनका कोई-न-कोई सम्बन्ध जरूर रहा है। डारविन ने जन्तु-जंक्शन की भी चर्चा की है, जिसके बदन में कई जन्तुओं की बनावट एक साथ ही मिली देखी गई। उससे कई अलग-अलग जन्तु निकलकर अपनी-अपनी राह लगे।

ऐसे जंक्शन-जन्तु ऑस्ट्रेलिया में आज भी मौजूद हैं। कभी एशिया और ऑस्ट्रेलिया एक ही महादेश थे। बाद में समुद्र ने दोनों को एक-दूसरे से अलग कर दिया। जब उस

समय एशिया और ऑस्ट्रेलिया एक ही महादेश था तो कहना होगा कि सारे ही देश में एक जैसे जीव थे। ऐसे प्राणी अवश्य रहे होंगे जो कि छिपकली जातीय जीव से दूध पिलाने वाले जीव बन गए। उन्हें केवल दूध पिलाने वाली जाति का भी कैसे कहा जाय, क्योंकि उनमें छिपकली जाति वालों के रंग-ढंग भी रह ही गए थे। उन्हें छिपकली और दूध पिलाने वाली जातियों की खिचड़ी कह सकते हैं।

दो नावों पर पाँव रखना कभी खतरे से खाली नहीं होता, डूबना पड़ता है। शायद हो कि ऐसे जीवों का इसीलिए बाद में नामोनिशान मिट गया, और ज़्यादा तरक्की करने वाले दूध पिलाने वाले जीवों ने उन सबका खातमा कर दिया। केवल ऑस्ट्रेलिया में उनकी चपेट से बचकर वे टिके रह गए हैं। डकबिल को ही लीजिए। इनके बिल्ली जैसे रोएँ होते हैं, मगर देते हैं अण्डा। कंगरू को लीजिए। कंगरू अण्डे के बजाय बच्चा जनते हैं, लेकिन पेट की जिस थैली में उनके बच्चे पलते हैं, वह थैली पेट के बाहर रहती है। जब बच्चा पहले-पहल थैली में आता है, तब वह एक-डेढ़ इंच से ज़्यादा बड़ा नहीं होता; आँखों से उस समय उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कोई तीन महीने बाद वह थैली से बाहर झाँक-ताक करने लगता है और कई महीनों में उससे बाहर निकल पड़ता है। परन्तु छिपकली जाति के जीवों के पेट के नीचे जो कुछ खास तरह की हड्डियाँ दिखाई पड़ती हैं, वे हड्डियाँ उसी जगह पर कंगरू के भी होती हैं।

ख़ैर, जो भी हो, कई लाख बरसों से धरती पर दूध

पिलाने वाले जीवों का ही राज रहा था। उनके आगे और सब जीव हार मान बैठे, बाघ को छोड़कर। बाघ जब झपटता तो वे पेड़ों की फुनगी पर चढ़कर अँगूठा दिखाते; मुँह भी चिढ़ाते शायद। इनका नाम प्राइमेट है। ये भी दूध पिलाने वाले जीव हैं।

तो क्या बाद के दिन इन्हीं पर मुनहसिर हैं?

इसके उत्तर के लिए विलम्ब नहीं लगने का। झरोखे से झाँकते ही सामने वह पेड़ खड़ा दीख रहा है। उसके दो फल हमारे नसीब में ज़रूर होंगे—आनन्द का फल और जानकारी का फल।

जिस पेड़ पर चढ़ जाने वाले जन्तु का अभी ज़िक्र किया गया, पहले शायद वह बहुत छोटा-सा था—चूहे जैसा। बदन के हिसाब से पाँव के दोनों जोड़े और भी छोटे थे। पेड़ पर रहते-रहते पैरों का आकार-प्रकार बढ़ने लगा और शरीर की लम्बाई के मुताबिक फबने लगा। शरीर भी बढ़ने लगा।



ग्रौर, धीरे-धीरे उनमें बड़े-बड़े हेर-फेर हो गए।

पेड़ों पर चलने-फिरने के लिए चार पैरों की खास ज़रूरत नहीं होती, दो ही काफ़ी हैं। इसलिए उनके सामने वाले दोनों पैर दूसरे काम करने लगे—कोई चीज़ पकड़ना, घुमा-फिराकर उसे देखना, छूना, मुँह तक खाने की चीज़ पहुँचाना, डाल पकड़कर झूलना ग्रादि। ऐसा करते रहने का नतीजा यह हुग्रा कि सामने के पैर पैर न रहकर हाथ हो गए, उँगलियाँ लम्बी हो गईं, हाथ ग्रौर पाँव के ग्रँगूठे बन गए। उन उँगलियों को घुमाना-फिराना भी सम्भव हुग्रा। इस तरह पैर ग्रौर हाथ में फ़र्क़ ग्रा गया।

पेड़ों पर दौड़-धूप के लिए निगाहें पैनी होनी चाहिएँ। यह होना कुछ ग्रनहोना भी नहीं। नज़र गड़ाकर देखते-देखते उनकी दोनों ग्राँखें बड़ी होती गईं।

साथ-ही-साथ उनका मुँह छोटा होने लगा, क्योंकि मुँह का काम ग्रब सिर्फ चबाना रह गया था; बैल के समान मुँह से खाने की चीज़ें नोच लाने की दरकार नहीं रह गई थी।

सबसे बड़ी बात कि उनकी खोपड़ी की कायापलट हो गई; वह लम्बी के बजाय गोल होने लगी ग्रौर उसके ग्रन्दर दिमाग ग्राया।

ये हेर-फेर बहुत दिनों में, बहुत धीरे-धीरे, हुए। बीच ही में प्रकृति ने एक नई चुनौती दी। बरफ की बेहिसाब बाढ़ ग्राई। उत्तर के पहाड़ों से दानवों के समान बरफ़ की बड़ी-बड़ी चट्टानें लुढ़क-लुढ़ककर ग्राने लगीं। बरफ की उस खौफ़नाक बाढ़ में जंगलों का तो सफाया हो गया।

मानो प्रकृति ने ललकारकर कहा, बच्चू, तुम्हारी सारी करामात है पेड़ों पर; ज़मीन पर उतरकर कुछ कर दिखाओ तो जानें !

इसका जवाब प्राइमेटों से देते न बना। उत्तर से बरफ की चट्टानें ज्यों-ज्यों बढ़ती आईं, वे दक्खिन की ओर भागते गए।

उसी खानदान के एक जीव ने इसका जवाब दिया। ये थे वनमानुष। अपने दो पाँव रोपकर ये ज़मीन पर आ खड़े हुए। झुककर खड़े हुए हों शायद ! चलना भी शुरू कर दिया—अनाड़ी-सा, लँगड़े आदमी जैसा।

चाहे जो भी हो, खड़े वे हुए और चलने भी लगे। नाराज़ प्रकृति से उन्होंने लोहा लिया। अन्त में उनकी जीत भी हुई।

वे वनमानुष किस बूते पर जीत गए ? उनके न तो बाघों जैसे नाखून थे, न गैंडे जैसे पैने हथियार, और न साँप जैसे फन ही। फिर भी उन्होंने सबसे बाज़ी मार ली; सबको काबू में कर लिया। कैसे ?

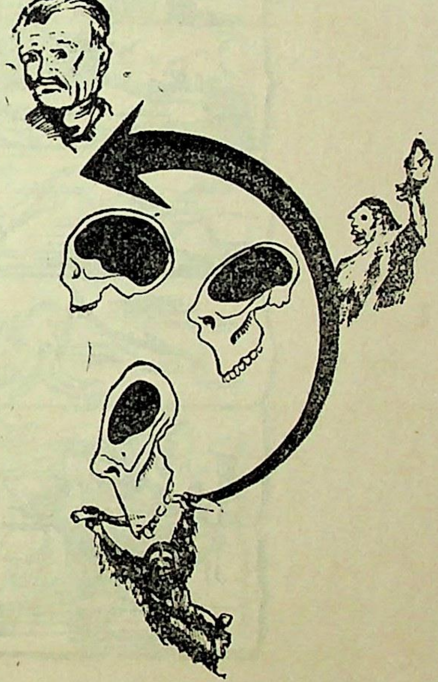
माथे के बल से, दिमाग के ज़ोर से। उसी दिमाग से वे सबसे ज़्यादा अनुभवी, सबसे ज़्यादा सोचने वाले बन सके।

और मनुष्य ने सब-कुछ अपनी मुट्ठी में किया है बाहुबल से, मुट्ठी के ज़ोर से। वह अपनी मुट्ठी में सब कुछ कसकर पकड़ सकता है, उसकी गलती ठीक कर सकता है। पत्थर को वह तीर बना सकता है, मिट्टी को बरतन बना सकता है, लोहे

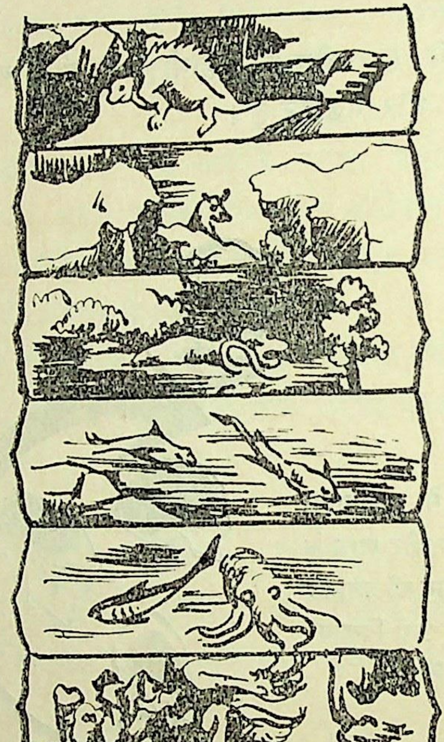
को हल का फाल, लकड़ी को पहिया, बाँस को बाँसुरी और सात तार से सितार बना सकता है।

इसीलिए मनुष्य की जीत हुई है; हारते-हारते वह जीत गया है।

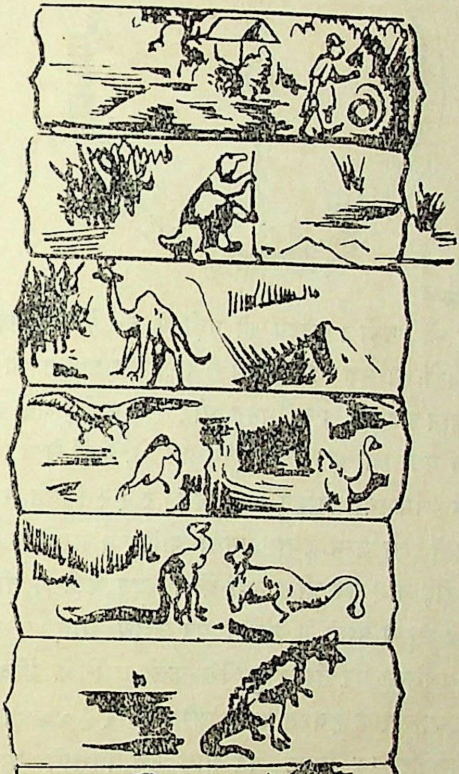
उसकी हार-जीत की कहानी दूसरे जीवों की कहानी से भी रोचक और मज़ेदार है।



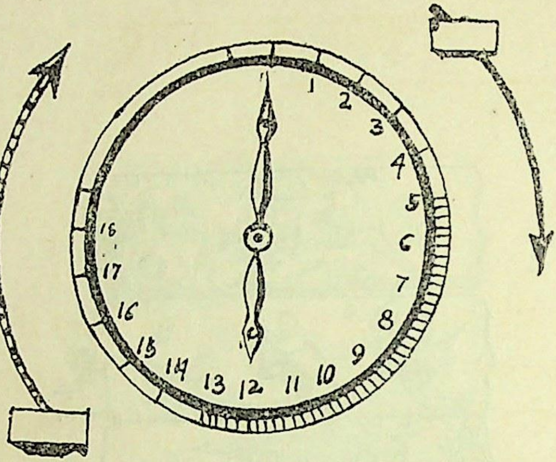
इस चित्र में वनमानुष, आदिम मानव और आज के मनुष्य के दिमाग की बनावट और नाप का फ़र्क दिखाया गया है।



आमने-सामने की दोनों तस्वीरों में १४ अध्यायों में प्राण की कहानी है। एक में सात अध्याय और दूसरे में सात अध्याय।



यह कहानी ऊपर से नीचे नहीं, नीचे से ऊपर को पढ़ी जाती है। समझ गए न ? अब बाकी रह गया मनुष्य !



यह है प्रकृति की घड़ी। मनुष्य की घड़ी में ६० सेकंड का एक मिनट और ६० मिनटों का एक घंटा होता है। लेकिन प्रकृति की घड़ी में १६ लाख ६० हजार वर्ष का एक मिनट और १० करोड़ वर्ष का एक घंटा होता है। इस घड़ी का काँटा जहाँ शून्य पर हो, वहीं से धरती पर प्राणों का जन्म शुरू समझना चाहिए। ८ बजकर १२ मिनट से पहले-पहल रीढ़ वाले जीवों का जन्म हुआ जानना चाहिए। उसके पहले किसी भी जीव के यह रीढ़ नाम की चीज़ नहीं थी। जब घड़ी में नौ बजे, मेढक की तरह तब टप् से पानी से ज़मीन पर उछल आए उभचर प्राणी। ९ बजकर २४ मिनट पर तैयार हुए छिपकली जाति के जीव। इस जाति के सबसे बड़े आकार के हजरत डाइनोसोर पधारे १० बजकर १० मिनट पर। १० बजकर १५ मिनट पर आए दूध पिलाने वाले जीव और १०-४० पर पंछी।

और आदमी ? आदमी अभी-अभी डेढ़-एक मिनट पहले पधारे हैं।

घड़ी में १२ बजने का मतलब है आज का युग, जोकि अभी तक चल रहा है।

प्रकृति की घड़ी के समय को मानुषी घड़ी से मिलाकर देखिए तो ? हिसाब में आपके दिमाग़ की दौड़ ज़रा देखें !

मनुष्य का शरीर

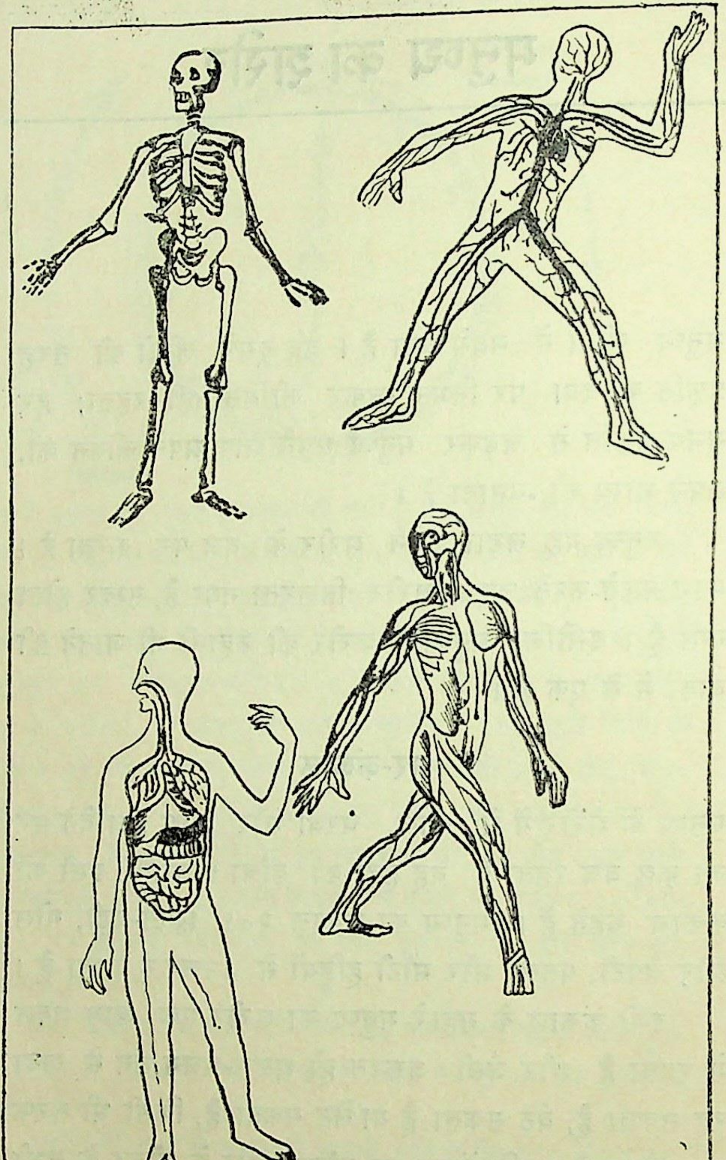
मनुष्य जीवों में सबसे बड़ा है। वह दूसरे जीवों की तरह प्रकृति की दया पर निर्भर रहकर जीवित नहीं रहता; हर समय प्रकृति से लड़कर मनुष्य अपने आप अपने जीवन को, अपने भाग्य को, बनाता है।

मनुष्य यह लड़ाई अपने शरीर के बल पर करता है। काम करते-करते उसका शरीर निखरता गया है, सुन्दर होता गया है। इसीलिए मनुष्य के शरीर की कहानी भी जानने की बातों में से एक है।

नर-कंकाल

मनुष्य के शरीर में से खाल, चरबी और मांस हटा देने पर जो कुछ बच रहता है वह हड्डी का ढाँचा होता है; इसी को कंकाल कहते हैं। मनुष्य का कंकाल २०६ छोटी-बड़ी, गोल और चपटी, पतली और मोटी हड्डियों से मिलकर बनता है।

इसी कंकाल के सहारे मनुष्य का शरीर एक खास शक्ल में रहता है और जैसी ज़रूरत हो अलग-अलग ढंग से खड़ा रह सकता है, बैठ सकता है या लेट सकता है, किसी भी तरफ मुड़ सकता है। हड्डियों का यह ढाँचा शरीर के भीतर के सभी



अंगों को अचानक लग जाने वाली चोट, धक्के या दबाव से बचाता है।

सभी प्राणियों के शरीर में हड्डियों का यह ढांचा नहीं होता। ज़मीन पर कंकालधारी प्राणी बहुत बाद में पैदा हुआ। रीढ़ की हड्डी वाले सबसे पुराने जिस प्राणी के निशान पाये गए हैं उसका कंकाल हड्डियों का नहीं बल्कि 'कार्टिलेज' नामक एक मुलायम चीज़ का बना हुआ था। आदमी का बच्चा जब अपनी माता के पेट में होता है उस समय उसका कंकाल भी 'कार्टिलेज' का ही बना होता है; बाद में चलकर वह हड्डी में बदल जाता है।

बाहर से मनुष्य के शरीर के तीन भाग किये जा सकते हैं।

सबसे ऊपर वाला भाग होता है सिर।

सिर क्या होता है? वह हड्डी का एक बक्स होता है—जिसे आम बोलचाल में खोपड़ी या कपाल कहते हैं। कपाल के दो मुख्य भाग होते हैं—क्रेनियम और चेहरे की हड्डी।

क्रेनियम में एक बहुत बड़ी खोखली जगह होती है। इसी के भीतर मस्तिष्क या मगज़ होता है। क्रेनियम में आठ हड्डियाँ होती हैं, जो मज़बूती से एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं। वे हिल-डुल नहीं सकतीं। इन हड्डियों के भीतर छेद होते हैं जिनमें से होकर शरीर के कोने-कोने में खून पहुँचाने वाली पतली-मोटी नसें दिमाग तक पहुँचती हैं। क्रेनियम के नीचे एक बहुत बड़ा छेद होता है, जिसके रास्ते रीढ़ के साथ दिमाग का सम्बन्ध रहता है।

क्रेनियम के नीचे वाला हिस्सा चेहरा होता है, जो चौदह

हड्डियों का बना होता है। इसमें बिलकुल नीचे वाली जबड़े की हड्डी ऊपर-नीचे हिल सकती है।

शरीर के बीच वाले भाग को ग्राम बोलचाल की भाषा में धड़ कहते हैं।

धड़ की सबसे मुख्य हड्डी को मेरुदण्ड या रीढ़ की हड्डी कहते हैं। यह हड्डी पीठ की ग्रोर गरदन से शुरू होकर बिलकुल नीचे मलद्वार के पास जाकर खत्म हो जाती है।

लेकिन रीढ़ की हड्डी एक समूची हड्डी नहीं होती। यह छब्बीस छोटी-छोटी हड्डियों से मिलकर बनती है, जिन्हें कशेरुका कहते हैं। ये कशेरुकाएँ एक खास तरह के बन्धन (लिगामेंट) से एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं।

तरह-तरह के रीढ़ वाले जानवरों की रीढ़ की हड्डी मोटे तौर पर बिलकुल सीधी ही होती है, बस गरदन के पास कुछ झुकी रहती है। पर मनुष्य की रीढ़ की हड्डी चार जगह से झुकी हुई होती है। चार जगह से झुकी हुई रीढ़ की हड्डी होने की वजह से ही मनुष्य दो पैरों पर ग्रपना बोझ सँभाले रख सकता है ग्रौर चल-फिर तथा हिल-डुल सकता है।

हर कशेरुका के बीच में एक छेद होता है। छब्बीस कशेरुकाग्रों के इन छब्बीस छेदों के मिलने से एक नली बन जाती है; इस नली का ऊपर वाला मुँह ठीक उसी जगह पर जाकर खुलता है जहाँ पर क्रेनियम के ठीक नीचे वाला छेद होता है।

धड़ के ऊपरी सिरे से दो हाथ ग्रौर निचले सिरे से दो पैर निकलते हैं। हाथ ग्रौर पैर की हड्डियों की बनावट मोटे तौर पर एक-जैसी ही होती है। चौपायों की ये हड्डियाँ तो

बिलकुल एक-जैसी होती हैं, क्योंकि वे इन दोनों जोड़े हड्डियों की मदद से ही चलते-फिरते हैं। मनुष्य के शरीर में सामने वाली जोड़ी हड्डियाँ काम करने के हाथ बन गए और इसीलिए वह थोड़े-थोड़े बदल भी गए।

मांस-पेशियाँ

अब हमें नर-कंकाल की मोटी-मोटी जानकारी तो मिल ही गई।

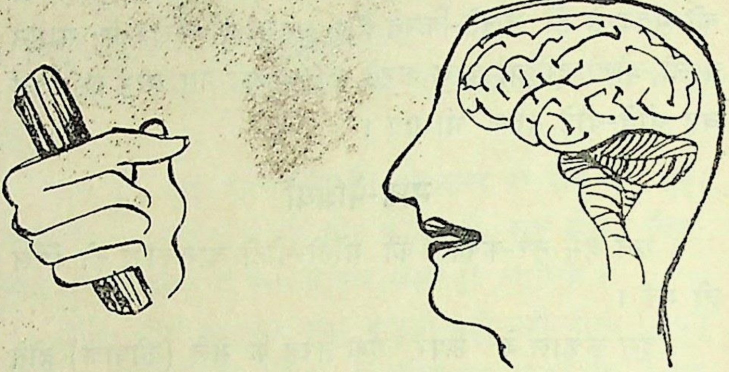
इस कंकाल के ऊपर एक तरह के सेल (कोषाणु) होते हैं जिनको रबर की तरह जिस तरह भी चाहें सिकोड़ा या फैलाया जा सकता है, छोटा या बड़ा किया जा सकता है। कंकाल के ऊपर लगे हुए इन फैलने-सिकुड़ने वाले खास तरह के सेलों को मांस-पेशियाँ कहते हैं; इन्हीं को अंग्रेजी में 'मसल' कहते हैं।

मांस-पेशियाँ दो तरह की होती हैं एक तो ऐसी जिन्हें हम जिस तरह चाहें खींच सकते हैं, बढ़ा सकते हैं; दूसरी ऐसी मांस-पेशियाँ जो अपनी मरज़ी से ही छोटी या बड़ी होती हैं। दिल, पेट और आँतें वगैरा इन्हीं दूसरी तरह की मांस-पेशियों की बनी होती हैं।

तन्तु

मनुष्य बहुत-से सेलों से मिलकर बना हुआ है। ये सेल कई तरह के होते हैं और इनके काम भी अलग-अलग होते हैं।

जब किसी एक काम के लिए कई सेल एक में मिल जाते हैं तब सेलों के इस समूह को तन्तु कहते हैं। मनुष्य के शरीर



मनुष्य को पंडित लोग 'होमोसेपियन्स' कहते हैं। लातिन भाषा के इस शब्द का मतलब है 'जानने वाला प्राणी'। यह नाम बहुत ही ठीक है। मनुष्य का सारा शरीर जैसे एक कारखाना है। काम की निगरानी के लिए जैसे हर कारखाने में एक मैनेजर होता है उसी तरह शरीर का मैनेजर है दिमाग। दिमाग खोपड़ी के अन्दर की नरम चीज़ है—लहरदार बनावट, सामने की ओर बड़ा, पीछे से छोटा।

इसके दो काम हैं। एक है किसी खतरे से बचने का उपाय करना, जैसे हाथ को आँच लगी और दिमाग के हुक्म से हाथ हटा लिया गया। ऐसे सीधे-सादे काम उसके निचले हिस्से से होते हैं। इसका दूसरा बड़ा काम है सोच-विचारकर कुछ करना। मनुष्य ने जो कुछ भी देखा है, सीखा है, समझा है, वह सब कुछ दिमाग के सामने वाले हिस्से में जमा रहता है। दिमाग में शरीर के कोने-कोने से खबरें पहुँचती हैं। दिमाग तक खबर आने और दिमाग से खबर जाने का काम स्नायुओं के सहारे होता है; एक खबर लाती है, दूसरी ले जाती है। स्नायु सेलों की बनी होती हैं—लम्बी-पतली बनावट, तार-जैसी। धागे से एक में गुँथी-गुँथी-सी स्नायुओं का जाल सारे शरीर में बिछा है। बहुत-सी स्नायु रीढ़ के निचले भाग से शुरू होकर और उसके पोले भाग से होकर दिमाग तक चली जाती हैं।

में चार तरह के तन्तु होते हैं—आच्छादक (ढकने वाले), संयोजक (जोड़ने वाले), पैशिक (मांस-पेशियों के), और स्नायविक (नर्व-सम्बन्धी)।

शरीर की खाल का ऊपरी हिस्सा आच्छादक तन्तु का बना होता है। खाल का अंदर का हिस्सा, जिस पर चरबी जमी होती है, संयोजक तन्तु का बना होता है। मांस-पेशियों के तन्तुओं में खास बात यह होती है कि बाहर से कोई चोट-चपेट लगने पर या सरदी-गरमी महसूस होने पर वे अपने आपको सिकोड़ या फैला लेते हैं। शरीर के कुल बोझ में से लगभग तिहाई भाग इन मांस-पेशियों के तन्तुओं का होता है। स्नायु के तन्तुओं की खास बात यह है कि शरीर जिस चीज़ को भी महसूस करता है उसे वे पूरे शरीर में फैला देते हैं।

अंग तथा तन्त्र

शरीर में कई अंग होते हैं। दिल एक अंग है जिसका काम है खून को सारे शरीर में पहुँचाना; अग्न्याशय एक दूसरा अंग है जिसका काम है भोजन पचाने वाले रस तैयार करके शरीर में पहुँचाना; मेदा एक और अंग है जिसका काम है भोजन पचाकर आँतों में भेजना। इसी तरह हर अंग के अलग-अलग काम हैं।

जब कई अंग मिलकर हमारे शरीर में किसी एक खास काम को पूरा करते हैं तो उन सब अंगों को मिलाकर तन्त्र कहते हैं।

मनुष्य के शरीर में स्नायु-तन्त्र, शरीर में ख़ून दौड़ाने का

तन्त्र, साँस लेने का तन्त्र, खाना पचाने का तन्त्र वगैरा कई तन्त्र हैं।

खून दौड़ाने वाले तन्त्र की मदद से मनुष्य के पूरे शरीर में, शरीर के हर सेल तक, खून की धारा पहुँचती है। खून में सेलों को ज़िन्दा रखने के लिए ताक़त पहुँचाने वाली चीज़ें होती हैं। ये ताक़त पहुँचाने वाली चीज़ें शरीर के हर सेल तक पहुँचा देने के अलावा खून दौड़ाने वाले तन्त्र की मदद से इन सेलों से मल-मूत्र आदि बेकार चीज़ों को आखीर में शरीर से बाहर निकाल देने का इन्तज़ाम भी होता है।

साँस लेने वाले तन्त्र की मदद से हम अपने शरीर के लिए ताज़ी ऑक्सीजन लेते हैं और शरीर से गन्दी कारबन-डाइ-ऑक्साइड गैस बाहर निकाल देते हैं।

खाना पचाने वाले तन्त्र की मदद से हमारा भोजन पचता है।

और स्नायुओं वाले तन्त्र की मदद से हम अपने चारों ओर की चीज़ों की जानकारी हासिल करते हैं, सोचते हैं, समझते हैं, और अपने इस शरीर से तरह-तरह के काम कर सकते हैं,

दुनिया को बदल सकते हैं!

जानने की बातें

पहला भाग : प्रकृति-विज्ञान
दूसरा भाग : रसायन-विज्ञान
तीसरा भाग : पदार्थ-विज्ञान-१
चौथा भाग : ललित-कला
पाँचवाँ भाग : दर्शन
छठा भाग : इतिहास-१
सातवाँ भाग : इतिहास-२
आठवाँ भाग : साहित्य
नवाँ भाग : पदार्थ-विज्ञान-२
दसवाँ भाग : भारत और
दुनिया की बात

राजकमल

नयी बातें जानने की इच्छा सभी के मन में होती है, चाहे वह बच्चा हो या बूढ़ा; और हमें कई तरीक़ों से हरदम नयी-नयी बातें मालूम भी होती रहती हैं—किताबों से, अखबारों से, रेडियो से, किसी से सुनकर और कई दूसरे तरीकों से ।

फिर भी जिन बातों को जानना हरेक आदमी के लिए ज़रूरी है वे सारी बातें हमें इन तरीकों से पूरी तरह नहीं मालूम हो पातीं । यह भी सच है कि आम तौर पर किताबों में ये बातें जिस तरह लिखी या समझाई जाती हैं उसे आम आदमी आसानी से समझ नहीं सकता । इसलिए आम लोगों को, नया-नया पढ़ना-लिखना सीखने वाले बड़ी उमर के लोगों को और बच्चों को भी, ये बातें समझाने के लिए खास ढंग से लिखी गई किताबों की ज़रूरत होती है ।

'जानने की बातें' के नाम से जो किताबें छापी जा रही हैं वे इसी बात को ध्यान रखकर लिखी गई हैं। हज़ारों बरसो इंसान ने जो कुछ सीखा है उसे इन कित में थोड़े में और ऐसी आसान भाषा में लि गया है कि आम आदमी उसे समझ सके ।